धर्मायण

विषय - सूची

ऋग्वेद में श्राद्धकर्म की श्रेष्ठता 3

रुचिकृत पितृ-स्तुति 11
हिन्दी अनुवाद- भवनाथ झा

अब लौं नसानीं, अब ना नसैहौं 18
श्री सुरेश चन्द्र मिश्र

दान करे कल्याण 23
पं. मार्कण्डेय शारदेय

संस्कृत नाट्यकला और भास 25
डॉ. क्षमा कुमारी

विष्णुपद मन्दिर का दर्शन और पूर्वजों का भाव-तर्पण 28
डा. एस. एन. पी. सिन्हा

ऋग्वेद में सविता का स्वरूप 29
डॉ. किरण कुमारी शर्मा

इंसान की नि:स्वार्थ सेवा ही सच्चा धर्म 34
श्री मगन देव नारायण सिंह

अलौकिक अनुभूतियाँ 37
श्री युगल किशोर प्रसाद

महाराज परीक्षित् का अनशन व्रत 41
डा. जयनन्दन पाण्डेय

युगल छवि गीत 48
डा. राकेश चन्द्र मिश्र 'विराट्'

पुरुषोत्तममास माहात्म्य 49
भारतेन्दु हरिश्चन्द द्वारा अनूदित

राष्ट्रीय अस्मिता और हिन्दी 58
प्रो० (डा.) आलोक कुमार

ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से गठिया रोग 63
आचार्य राजनाथ झा

एवं अन्य स्थायी स्तम्भ

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की पूर्ण सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोध परक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक : 87

जुलाई-सितम्बर, 2015

श्रावण-आश्विन, 2072

प्रधान सम्पादक

भवनाथ झा

सहायक सम्पादक

श्री सुरेशचन्द्र मिश्र

अतिथि सम्पादक

श्री मगनदेव नारायण सिंह

महावीर मन्दिर प्रकाशन

के लिए

प्रो. काशीनाथ मिश्र

द्वारा प्रकाशित

तथा

प्रकाश ऑफसेट, पटना में मुद्रित

अक्षर संयोजक दिनकर कुमार

पत्र-सम्पर्क:

धर्मायण,

पाणिनि-परिसर,

बुद्ध-मार्ग,

पटना-800001

दूरभाष – 0612-3223293

E-mail: mahavirmandir@gmail.com

Web: www.mahavirmandirpatna.org

मूल्य : **पन्द्रह रुपये**

प्रवचन

परमाचार्य उद्धव दासजी महाराज

रामभक्ति चिन्तामणि सुन्दर

09-07-2007

रामायण भागवत आदि आर्ष-ग्रन्थों में किसी विषय का प्रतिपादन दो प्रकार से किए गये हैं – सामान्य और विशेष। सामान्य का क्षेत्र विस्तृत होता है तथा विशेष का क्षेत्र संकुचित होता है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामचरितमानस में ज्ञान और भक्ति के सम्बन्ध में अपनी दृष्टि प्रतिपादित करते हुए सामान्य रूप से तो कह डाला कि भक्ति और ज्ञान में कुछ भेद नहीं है; – *"भक्तिहि ज्ञानहि नहि कछु भेदा। उभय हरहि भव संभव खेदा।"* अर्थात् साध्य की दृष्टि से भक्ति और ज्ञान दोनों जीव को संसार से छुड़ा कर ईश्वर तक पहुँचाने में समान है किन्तु विशेष दृष्टि से विचार करने पर उन्होंने पाया कि भक्ति ज्ञान से कहीं अधिक स्थायी और कारगर है – *"कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन विवेक। होय घुणाक्षर न्याय जो पुनि प्रत्यूह अनेक।* अर्थात् सभी प्रकार से ज्ञान उपेक्ष्य है और शक्ति ग्राह्य है। इतना ही नहीं, उन्होंने ज्ञानी को विना सींग-पूछ का पशु बतलाया – *रामचन्द्र के भजन विनु जो पद चह निर्वान। ज्ञानवन्त अपि सो नर पशु विनु पूँछ विखान।।* ज्ञान को उन्होंने बड़ी कठिनाई से पाकर भी आसानी से मिट जाने वाला पदार्थ कहा। उन्होंने आध्यात्मिक गौ की कल्पना की; वेद, पुराण आदि साधनों को घास आदि माना; फिर दूध की कल्पना की; दूध दूहा गया उसे जमाया गया। शम दम आदि देकर दही के रूप में परिणत कर घी निकाला गया। उस घी के दिये के प्रकाश में ज्ञान चक्षु से अनादि काल से चली आ रही भ्रान्ति तथा हृदय की ग्रन्थि को खोलने का प्रयास किया और उस सीमा तक सफल होने के पूर्व ही विषयों के झंझावातों ने दीप को बुझा दिया और पुनः जीव के आत्मा का पूर्ववत् पतन हो गया। ज्ञान की ऐसी ही भंगुर स्थिति होती है किन्तु भक्ति रूपी मणि के प्रकाश में यदि उस ग्रन्थि का भेदन होगा तव कभी भी किसी प्रकार के झंझावातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसीलिए तुलसीदास विशेष दृष्टि से कहते हैं-

रामभक्ति चिन्तामणि सुन्दर। बसय गरुड़ जाके उर अंतर।।
परम प्रकाश रूप दिन राति। नहि कछु चहिय दिया अरु बाती।।

पाठकीय प्रतिक्रिया

'धर्मायण' प्रारंभ से ही धार्मिक, आध्यात्मिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक रचनाओं को प्राथमिकता के साथ प्रकाशित करता रहा है जिनसे सुधी पाठकों को नवीन चिंतन, विचार और प्रेरणा प्राप्त होता रहा है। नए अंक से मैंने कई स्तंभों की शुरूआत देखी। इसके लिए संपादक मंडल धन्यवाद के पात्र हैं।मेरा सुझाव है कि प्रत्येक अंक एक विशेषांक के तौर पर प्रकाशित किए जाएँ। धर्म, दर्शन, भक्ति, साहित्य, कला, संगीत, ज्योतिष एवं चिकित्सा क्षेत्र से विषय ग्रहण कर विद्वान् रचनाकारों से विषय लेकर अधिक से अधिक पृष्ठों का विशेषांक प्रकाशित किया जाए। ऐसा करना शोध छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

डा. पंडित विनय कुमार,
शिक्षक, महेश हाईस्कूल अनीसाबाद,
पटना, पिन. 800002
मो09334504100

ऋग्वेद में श्राद्धकर्म की श्रेष्ठता

सनातन धर्म में मरणोपरान्त दाह संस्कार किया जाता है। इस संस्कार का संकेत हमें ऋग्वेद में भी मिलता है। यज्ञ में अग्नि की प्रार्थना करते समय कहा गया है कि हे अग्निदेव, मांसभक्षण करनेवाले, शरीर को लेकर यमलोक तक पहुँचानेवाले अर्थात् शव को जलानेवाले आप यमलोक चले जायें। यहाँ यज्ञ में आप अपने दूसरे रूप में पधारकर देवताओं के लिए हविष्य ले जायें। इस मन्त्र में अग्निदेव के दो रूप मिलते हैं-(1) मरणोपरान्त शरीर को यमलोक तक पहुँचानेवाले क्रव्याद अग्नि तथा (2) देवताओं को हविष्य पहुँचानेवाले यज्ञाग्नि। यह मन्त्र इस प्रकार है-

क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं
यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः।
इहैवायमितरो जातवेदाः
देवेभ्यो हव्यं वहतु सुप्रजानन्।।

(10.16.9)

इस मन्त्र से स्पष्ट संकेत है कि मृत्यु के उपरान्त अग्नि-संस्कार का विधान भारत में ऋग्वेद काल से ही है।

इस दाह संस्कार से पहले अभ्युक्षण अर्थात् स्नान कराने का भी विधान है, जो वर्तमान में सभी प्रचलित पद्धतियों में उपलब्ध है। इस स्नान का भी संकेत हमें ऋग्वेद के 10 वें मण्डल के 14वें सूक्त यम-सूक्त में मिलता है। वहाँ कहा गया है कि श्मशान में चार आँखों वाले दो कुत्ते हैं, जो शव को दूषित करने के लिए तत्पर हैं, किन्तु वे शव का स्पर्श तक नहीं कर पाते, क्योंकि शव का अभ्युक्षण (मन्त्रों से अभिषेक एवं स्नान) करा दिया गया है।

यह भी अवधारणा है कि श्मशान की वह भूमि यमराज ने मृतक को दी है, जहाँ उसका दाह-संस्कार होना है। वहाँ से सभी पिशाचों को दूर हट जाने के लिए कहा जाता है:- शव दाह्यभूमि (श्मशान) पर वास करनेवाले भूत-पिशाचो! इस मृत यजमान की दहन भूमि को छोड़कर दूर हटो। यह भूमि इस मृतक यजमान का स्थान है। यह स्थान दिन के द्वारा, रात्रि के द्वारा, और अभ्युक्षण जल के द्वारा अत्यन्त शुद्ध है। मृतकों के देवता यम ने यह स्थान इस मृतक को दिया है।।9।।

यहाँ पर श्मशान की अग्नि से प्रार्थना की गयी है कि आप इस मृतक को वहाँ ले जायें, जहाँ इनके पूर्वज गये हैं और यमलोक में यमराज के साथ प्रसन्नतापूर्वक रह रहे हैं।

मरणोपरान्त किये जानेवाले श्राद्धकर्म के सम्बन्ध में यद्यपि परवर्ती कुछ पन्थों के द्वारा प्रश्नचिह्न लगाये गये हैं, जैसा कि आर्यसमाजियों ने लगाया है, किन्तु यदि हम वैदिक साहित्य का पुनरवलोकन करें तो पाते हैं कि ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में श्राद्ध का उल्लेख हुआ है, तथा मरणोपरान्त अपने माता-पिता के श्राद्धकर्म की श्रेष्ठता बतलायी गयी है। वैदिक साहित्य में श्राद्ध की चर्चा होने से इसकी प्राचीनता स्वयंसिद्ध है।

पुनर्जन्म सम्पूर्ण भारत की सनातन मान्यता है। वैदिक, बौद्ध, जैन- इन तीनों सम्प्रदायों में पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता की मान्यता है कि जिस प्रकार हम पुराने वस्त्रों को उतार कर नवीन वस्त्र धारण करते हैं, उसी प्रकार आत्मा भी पुराने या कटे-फटे शरीर को छोड़कर नवीन शरीर में प्रवेश करती है। यही मृत्यु और पुनर्जन्म है। यह आत्मा कभी मरती नहीं, न जन्म लेती है; यह अजर है, अमर है।

वैदिक मान्यता है कि मरणोपरान्त हमारे पूर्वज यमलोक जाते हैं, वहाँ यम की प्रसन्नता के कारण उनकी कृपा से वे अच्छे स्थान पाते हैं, जहाँ वे अपने पूर्वजों के साथ रहते हुए विभिन्न प्रकार के सुख भोगते हैं। अतः मृत्यु के देव यम को प्रसन्न करने के लिए उनकी स्तुति करना, उन्हें हविष्य प्रदान करना प्रत्येक मृतक की सन्तान का कर्तव्य है, ताकि माता-पिता मरणोपरान्त यमराज की कृपा प्राप्त कर सकें और अपने पूर्वजों के लोक में जाकर उनसे मिल सकें, साथ ही उन्हें प्रेतलोक में भटकना न पड़े।

ऋग्वेद के दशम मण्डल के 14वें सूक्त यम-सूक्त में मृत प्राणी के आत्मज पुत्र को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि तुम्हारे पितरों के स्वामी यम हैं, जो श्राद्ध में दिये गये अन्न को ग्रहण करते हैं, तुम इससे उन्हें तृप्त करो। यम विधिपूर्वक किये गये श्राद्ध से प्रसन्न होते हैं, और मृत प्राणी को अभीष्ट देश (स्वर्ग) जाने के सारे मार्ग प्रशस्त करते हैं। मरणोपरान्त जीव को यही सद्गति प्रदान करने के अधिकारी हैं।

इसी सूक्त में आगे संकेत है कि मृतप्राणी स्वर्ग में देवराज इन्द्र की प्रजा बन जाते हैं। इन पितरों में जो महत्त्वपूर्ण कव्य, अंगिर, ऋक्व आदि पितर हैं वे क्रमशः इन्द्र, यम एवं बृहस्पति की भी सहायता करते हैं। ये सभी पितर वर्धमान है, हमेशा वृद्धि करते हैं। उनके इस स्वर्ग के जीवन के लिए श्राद्ध कर यम देव को प्रसन्न करना आवश्यक है।

इसी सूक्त में यम से प्रार्थना की गयी है कि आप श्राद्ध-कर्म में पधारकर कुश के आसन पर बैठकर यजमान (कर्ता) को अभीष्ट फल दें। कर्ता यजमान के रूप में यह कामना करता है कि हमारे पुराने पूर्वज अर्थात् पितामह, पितामही, प्रपितामह प्रपितामही आदि ऊपर की पीढ़ी के थे, जो पहले ही मरणोपरान्त जिस मार्ग से गये हैं, उसी मार्ग हमारे ये नवीन पूर्वज माता-पिता जायें और इस श्राद्ध में अन्न से तृप्त यमदेवता एवं राजा वरुण का दर्शन करें।

इसी यम-सूक्त में कर्ता अपने मृत माता-पिता से प्रार्थना करते हैं कि हे मृतक! आपके पितर स्वर्ग में पूर्व से विराजमान हैं, जाकर उनसे मिलें। आप ने जो इष्टापूर्त (श्रौत-स्मार्त निरूपित दान) की है, उस फल से भी आप मिलें। इस इष्टापूर्त के फल से आप पाप रहित (अनवद्य) होकर व्रियमान नामक ग्रह में स्थान प्राप्त करें और अपने शोभन दीप्त शरीर का भी साक्षात्कार करें।

इस मन्त्र में यह भी संकेत किया गया है कि स्वर्गलोक में प्रत्येक प्राणी अपने प्रकाशमान शरीर को धारण करते हैं तथा अपने पूर्वजों के बीच सम्मिलित होकर सुख भोगते हैं। यही संकल्पना वर्तमान श्राद्ध-पद्धति में सपिण्डीकरण (पितर-मिलौनी) का नियमन करता है।

इसी प्रकार, ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 15वें सूक्त पितृसूक्त में कर्ता अपने पितर से प्रार्थना करता है कि उन सभी पितरों को मेरा नमस्कार प्राप्त हो जो पितर पहले मरे हैं, यथा- पितामह, ज्येष्ठ भ्रातादि एवं जो पितर पीछे मरे हैं यथा- कनिष्ठ भ्रातादि। जो पितर नव जन्म ग्रहण कर बन्धु रूप में पृथ्वी पर आ चुके है अथवा जो पितर अभी द्यु-लोक में श्रेष्ठों के बीच हैं, उन सब पितरों को मेरा आज नमस्कार।

इस प्रकार ऋग्वेद के तीन सूक्तों में मृत्यु के उपरान्त सन्तान द्वारा किये जानेवाले श्राद्ध-कर्म की मूल भावना निहित है। साथ ही हम देखते हैं कि यहाँ सामान्य मनुष्य की चर्चा की गयी है, जाति का कहीं भी उल्लेख नहीं है। व्यवहार में भी प्रत्येक जाति के प्रत्येक गृहस्थ के लिए श्राद्ध का विधान है। हलाँकि, मध्यकाल में श्राद्ध के स्वरूप का किञ्चत् विस्तार हो गया है, जिन्हें सम्पादित करने की आवश्यकता है। मूलश्राद्ध की जड़ें ऋग्वेद काल से है। इन तीनों सूक्तों के अधिकांश मन्त्र वर्तमान श्राद्ध-पद्धति में उपलब्ध हैं। इन्हें पढ़ने का बाद पितरों के प्रति हमारी श्रद्धा बलवती होती है, इसलिए सभी पाठकों के लिए भारतीय ज्ञान की यह धरोहर हिन्दी अनुवाद के साथ यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। इसका अनुवाद **पं. सुरेशचन्द्र मिश्र** द्वारा किया गया है:-

ऋग्वेद- मण्डल १०, सूक्त १४

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ।।१।।

मृत प्राणी के अन्तःकरण स्वरूप, हे यजमान, तुम्हारे पितरों के स्वामी यम हैं, जो पुरोडाश (श्राद्ध में दिये गये पाकान्न) को ग्रहण करते हैं, तुम इससे उन्हें तृप्त करो। यम विधिपूर्वक किये गये श्राद्ध से प्रसन्न होते हैं और मृत प्राणी को सुखद देश (स्वर्ग) जाने के सारे मार्ग प्रशस्त करते हैं। मरणोपरान्त जीव को यही सद्गति प्रदान करने के अधिकारी हैं।।1।।

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः।।२।।

इनका मार्ग सदा अबाध है, इन्हें कोई रोक नहीं सकता। जिस मार्ग से हमारे पितर गये हैं, सारे मृतक जीव पूर्वापर आगे पीछे रूप से अपने कृत कर्म के अनुसार इसी मार्ग से जाते हैं।

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति।।३।।

मातली सारथी वाले इन्द्र कव्यभोगी पितरों की सहायता से, यम अङ्गिर नामक पितरों की सहायता से, बृहस्पति ऋक्व नामक पितरों की सहायता से बढ़ते हैं। इस तरह जो देवताओं की सहायता से बढ़ते हैं और जो देवताओं की सहायता करते हें, वे सभी वर्धमान है। समासतः स्वाहा ग्रहण करनेवाले और स्वाहा से प्रसन्न होने वाले सभी वर्धमान है।

इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व।।४।।

यम, अङ्गिरा नामक ऋषियों के साथ एकमत होकर इस विराट् यज्ञ में सम्मिलित हों। ऋत्विकों के द्वारा प्रयुक्त मन्त्र तुम्हारा आह्वान करते हैं। हे राजन, इस हविष् से तृप्त होकर आप यजमान को अभीष्ट फल दें।।4।।

अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्य।।५।।

हे यमराज, आप वैरूप (अनेक रूप वाले) अङ्गिरा के साथ इस श्राद्ध में पधारें एवं यजमान को अभीष्ट फल दें। आप सूर्य पुत्र हैं, मैं इस यज्ञ में उनका भी आवाहन करता हूँ। वे भी कुशासन पर बैठकर कर्त्तारूप यजमान को हर्षित करें।

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम।।६।।

मेरे पितर, जो अङ्गिरा, अथर्वा और भृगु नाम वाले हैं उन्होंने अभी-अभी पधार कर, हमारे ऊपर अपनी प्रीति दिखाई है। हम सभी यज्ञ को सफल बनानेवाले उन पितरों की कृपा-दृष्टि का लाभ लें। हमें उनका अनुग्रह प्राप्त हो, और हम सभी सन्मार्ग पर चलें।

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम्॥७॥

हमारे पुरातन पितर पितामहादि जिस मार्ग से गये हैं, तत्काल मृत प्राणी भी उसी रास्ते से जाएँ, एवं वहाँ जाकर स्वधा (पितरों के भोज्य पदार्थ, पिण्डादि) से तृप्त यम एवं प्रकाशमान् वरुण देने को देखें।।7।।

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः॥८॥

हे मृतक! आपके पितर स्वर्ग में पूर्व से विराजमान हैं, जाकर उनसे मिलें। आप ने जो इष्टापूर्त (श्रौत-स्मार्त निरूपित दान) किया है, उस फल से भी आप मिलें। इस इष्टापूर्त के फल से आप पाप रहित (अनवद्य) होकर ब्रियमान नामक ग्रह में स्थान प्राप्त करें और अपने शोभन दीप्त शरीर का भी साक्षात्कार करें।

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन्।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै॥९॥

ऐ शव दाह्यभूमि (श्मशान) पर वास करनेवाले भूत-पिशाचो! इस मृत यजमान की दहन भूमि को छोड़कर दूर हटो। यह भूमि इस मृतक यजमान की है। यह स्थान दिन के द्वारा, रात्रि के द्वारा और अभ्युक्षण जल के द्वारा अत्यन्त शुद्ध है। मृतकों के देवता यम ने यह स्थान इस मृतक को दिया है।।9।।

अतिद्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।
अथा पितॄन् सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति॥१०॥

हे अग्नि! चार आँख वाले और चितकबरे ये दो भयानक सारमेय- कुत्ते हैं, मृतक को शीघ्र इनसे दूर ले जाओ। इस मृतक को सुगम मार्ग से वहाँ ले जाओ जहाँ इनके पितर यम के साथ मुदित भाव से रहते हैं।।10।।

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ।
ताभ्यामेनं परिदेहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि॥११॥

हे राजन्, हे यम, ये चार नेत्र वाले दोनों कुत्ते आपके घर के रक्षक हैं, और आपके मार्ग के भी रक्षक हैं। ये मृत लोक वासी मनुष्यों से बहुविध प्रशंसित हैं। इनसे इस मृतक की रक्षा करें, इन्हें व्याधिरहित करें एवं सुन्दर फल के भागी बनावें।।11।।

उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतौ जनाँ अनु ।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम्॥१२॥

लम्बी नाकों वाले, दूसरे के प्राण भक्षण कर तृप्त होनेवाले, मनुष्यों को लक्ष्य कर विचरण करनेवाले, एवं अपरिमित बल वाले, जो दो यमदूत हैं, वे आज यहाँ कमें, सूर्य के दर्शन के लिए यथेष्ट ऊर्जा दें।

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः॥१३॥

हे ऋत्विक्, तुम मृत्युदेवता यम को सोम एवं हवि का हवन करो। इसके दूत अग्नि हैं जिन्हें विधि भोगों से संतुष्ट किया गया है, क्योंकि ये ही इस श्राद्ध के द्वारा हमें यश की ओर ले जाते हैं।।13।।

यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत ।
स नो देवेष्वा यमद्दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥१४॥

हे ऋत्विक्, पिण्डदाता, तुम यम के लिए घृत युक्त पुरोडाशादि हवि से हवन कर इन्हें प्रसन्न करो। हे देवों के बीच श्रेष्ठ यम, आप हमें दीर्घायु प्रदान करें।।14।।

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ।।१५।।

हे पिण्डदाता ऋत्त्विक्, यम मिष्ट हवि ग्रहण करते हैं, इन्हें मिष्ट हवि दें। ये ऋत्विक् हवि के द्वारा सुगम मार्ग बनाते हैं अतः पहले इन्हें नमस्कार है।।15।।

त्रिकद्रुकेभिः पतति शलुर्वीरेकमिद्बृहत् ।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता ।।१६।।

त्रिकद्रुक यज्ञ (ज्योति, गौ आयु) के अधिकारी यम देवता हैं। ये यम द्युलोक, भूलोक, जल, उद्भिज, उर्क, सुनृत नामक छः स्थानों में रहते हैं। वेदों में प्रयुक्त गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप् आदि छन्दों में यम की बार-बार स्तुति है क्योंकि यम ही इस विस्तृत संसार में सदा विचरणशील हैं। ऋत्विक् सदा इनकी ही स्तुति किया करते हैं।।16।।

ऋग्वेद- मण्डल १०, सूक्त १५

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु।।१।।

हमारे पितरों की तीन श्रेणियाँ हैं- उत्तम, मध्यम और अधम। ये पितर मेरे द्वारा दत्त होमीय द्रव्यों को कृपापूर्वक स्वीकार करें। मैं उनके प्रति अत्यन्त कृतकृत्य हूँ, जो पितर मेरे इस यज्ञीय कर्म- धर्मानुष्ठान में अहिंसक भाव रखकर कृपा-पूर्ण दृष्टि से मेरी रक्षा करने को उपस्थित हैं। इस यज्ञानुष्ठान पर्यन्त वे मेरी रक्षा करें।

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्व ये पूर्वासो य उपरास ईयुः।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता यो वा नूनं सृवृजनासु विक्षु।।२।।

उन सभी पितरों को मेरा नमस्कार प्राप्त हो जो पितर पहले मरे हैं, यथा-पितामह, ज्येष्ठ भ्रातादि एवं जो पितर पीछे मरे हैं यथा- कनिष्ठ भ्रातादि। जो पितर नव जन्म ग्रहण कर बन्धु रूप में पृथ्वी पर आ चुके है अथवा जो पितर अभी द्यु-लोक में श्रेष्ठों के बीच हैं, उन सब पितरों को मेरा आज प्रणाम।।2।।

आहं पितॄन्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः।।३।।

मेरे पितर मेरी भक्ति को भलीभाँति जानते हैं, इसी कारण मैंने उनकी कृपा भी मुझे प्राप्त है, मुझे विधिपूर्वक यज्ञानुष्ठान करने का निदेश भी उन्हीं से प्राप्त है। मेरे आदर पूर्वक दिये गये स्वधा पुरोडाश एवं सोमरस को पवित्र आसन पर बैठकर ग्रहण करनेवाले पितर आज मेरे बीच हैं।

बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्।
त आ गतावसा शंतमेनाथा नः शंयोररपो दधात।।४।।

यागादि शुभ कर्म कर जो मेरे पितर पितृलोक को प्राप्त हुए हैं, वे यहाँ आकर आसन ग्रहण कर मेरी रक्षा करें। उनके लिए ही यह हव्य है, इसका भोग करें। आएँ मेरी मङ्गल कामना करें, मुझे सुख दें एवं मुझे पाप रहित करें।।4।।

उपहूता पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्।।५।।

मेरे कृपा परायण, सोमपायी पितर, हवि रूप स्वाद भोगों का भक्षण करने वाले मेरे पितर जिन्हें मैंने बुलाया है इस श्राद्ध में आयें और आकर मेरे द्वारा प्रदत्त द्रव्यों को खाये एवं मेरी स्तुति स्वीकार करें।।5।।

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिगृणीत विश्वे।
मा हिंसिष्ट पितरः केनचिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम।।६।।

श्राद्धकर्त्ता यजमान विश्वास पूर्वक अपने पितरों से कहता है, हे पितर, आप लोग आयें, जानु (घुटना) टेक कर मेरे दक्षिण बैठें कुशलतापूर्वक मेरे द्वारा किये इस यज्ञ की सपफलता की कामना करें। मैं तुच्छ मनुष्य हूँ, अपराध होना स्वाभाविक है। अतः हे पितर, आप मेरे अपराधें के लिए मेरी हिंसा नहीं करें।

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्ज दधात।।७।।

लपलपाती ज्वाला के पास बैठनेवाले ये यजमान हैं, हे पितर इन्हें धन दें। हे पितर, इनके पुत्रों को धन दें। इन्हें यज्ञानुष्ठान श्राद्ध हेतु ऊर्जावान् बनावें, इन्हें तेज से भर दें।।7।।

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्य् उशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु।।८।।

शुद्ध वस्त्र धारण कर सोमपायी मेरे पूर्व पितरों ने विधि पूर्वक सोमपान किया था। अब वे तथा यम भी हवि की कामना करते हैं। मेरे उन पितरों के साथ यम भी प्रसन्न हो कर हव्य ग्रहण करें।।8।।

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः।।९।।

हे अग्नि, भलीभाँति यज्ञ करने वाले अपने स्तोत्रों से सूर्य की आराधना करनेवाले मेरे सभी पितर क्रमशः देवत्व को प्राप्त कर चुके हैं, यदि उन्हें अब भी भूख-प्यास सताती है तो आज (अग्नि) उन्हें मेरे निकट लाएँ। वे मेरे परिचित हैं और यज्ञानुष्ठान में भाग लेने वाले हैं। इस यज्ञ के सारे होमीय द्रव्य उन्हीं के लिए है।।9।।

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्मसद्भिः।।१०।।

हे अग्नि एकत्र हो भक्षण योग्य इवि को खाने वाले, पान योग्य हवि को पीनेवाले, इन्द्र के साथ रथ पर शोभायान सरल चित मेरे पितर हैं। देव पूजन, यज्ञानुष्ठान कर्त्ता ऐसे मेरे प्राचीन और नवीन पितरों के साथ आप मेरे पास आएँ।

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्य् अथा रयिं सर्ववीरं दधातन।।११।।

हे अग्निष्वात्ता (अग्निना आस्वादिता) नामक मेरे पितर आप सब इस पितृकर्म में आएँ। यहाँ आकर क्रमशः आसन ग्रहण करें एवं कुशासन पर दिये गये पवित्र हवि भक्षण करें। पश्चात् पुत्र-पौत्र सहित धनादि मुझे प्रदान करें।।11।।

त्वमग्न ईळितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि।।१२।।

हे जातवेद (जातं सर्वं जगत् वेत्ति इति) नामक अग्नि मैंने आपकी स्तुति की है। आपने मेरे द्वारा दिये गये हविष् को सुगन्धित कर पितरों को दे दिया है। मेरे पितर 'स्वधा' के साथ इस हवि को खाएँ। हे अग्नि देव (जातवेद) आप भी इस हवि को खाकर तृप्त हों।।12।।

चे चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्म याँ उ च न प्रविद्म।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥१३॥

जो मेरे पितर यहाँ उपस्थित है और जो नहीं भी है उपस्थित हैं वे सभी यहाँ आएँ। हे अग्नि, आप मेरे सभी पितरों को जानते हैं, जिन्हें मैं भी नहीं जानता। हे पितर, आप इस स्वधारूप अन्न (जो सुपक्व एवं स्वादिष्ट है) का इस यज्ञ में भक्षण करें।।13।।

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।
तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व॥१४॥

जो मेरे पितर श्मशान में भस्म हो चुके हैं और जो श्मशान कर्म को प्राप्त नहीं हुए हैं (अर्थात् नहीं जलाए गये हैं) वे सभी द्युलोक में स्वर्ग में स्वधा रूप हविष्यान्न भक्षण करते हुए आनन्दित हैं। हे तेजस्वी अग्नि, आप मेरे पितरों के प्राणपोषक शरीर को देव शरीर बनाने की कृपा करें, क्योंकि यही उनकी अभिलाषा है।।14।।

ऋग्वेद- मण्डल १०, सूक्त १३५

यस्मिन्वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः।
अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणाँ अनु वेनति॥१॥

यम देवता ताप जनित थकान को दूर करने के लिए जिस सुन्दर पत्र-पुष्प वाले पलाश वृक्ष पर बैठकर देवों के साथ खाते-पीते हैं, मेरे नर श्रेष्ठ (महान्) पिता भी उसी वृक्ष पर बैठकर अपने पूर्व पुरुषों (पुरुखों) का साथी बनना चाहते हैं।।1।।

पुराणाँ अनुवेनन्तं चरन्तं पापयामुया।
असूयन्नभ्यचाकशं तस्मा अस्पृहयं पुनः॥२॥

''मैं अपने पुराण पुरुषों का साथी बनू'' यह मेरे पिता की अभिलाषा थी। पर मैने उनकी उस उत्तम अभिलाषा को दोष-दृष्टि से देखा, यह मेरा पाप था। अब मैं इस दूषण बुद्धि का परित्याग कर उनके प्रति अनुरक्त हूँ।।2।।

यं कुमार नवं रथम् अचक्रंमनसाकृणोः।
एकेषं विश्वतः पाञ्चम् अपश्यन्नधि तिष्ठसि॥३॥

(नचिकेता को यम अपने इस कथन से प्रलोभित करता है) हे नचिकेत! आप ने चक्र रहित और एकेषयानी जिसमें एक ही दण्ड हो एवं जो चारो ओर जानेवाला हो, ऐसे रथ की चाह की थी, इस समय उसी रथ पर चढ़े हैं। (यम की दृष्टि में शरीर ही बह रहा है)

यं कुमार प्रावर्तयो रथं विप्रेभ्यस्परि।
तं समानु प्रावर्तत समितो नाव्याहितम्॥४॥

हे कुमार नचिकेत, आपने पृथ्वी पर वर्तमान अपने मेधावी भाई बन्धुओं की उपेक्षा कर यह रथ चलाया है। यह रथ आपके पिता के सदुपदेश के उपरान्त ही चला है। यह उपदेश आपके लिए नौका भूत आश्रय है। नौका पर सवार होकर ही यह रथ इस लोक से चला है।।4।।

कः कुमारमजनयद् रथं को निरवर्तयत्।
कः स्वित्तदद्य नो ब्रूयाद् अनुदेयी यथाभवत् ।।५।।

किस पुरुष ने इस कुमार को जन्म दिया, किसने इस रथ को भेजा है अथवा जिस प्रकार से यह बालक यम द्वारा भू-लोक पर आया है, इन बातों को आज मुझे कौन कहेगा?।।5।।

यथाभवदनुदेयी ततो अग्रमजायत।
पुरस्ताबुद्ध्न आततः पश्चान्निरयणं कृतम्।।६।।

जिस पिता के द्वारा यह बालक यम के अनुग्रह से भू-लोक में आयेगा, यह पहले से ही ज्ञात है। यहाँ पहले पिता निर्दिष्ट मूल उपाय यानी यह घर तक कैसे जाए, यह बताया गया है। बाद वहाँ से कैसे लौटा जाए, इसकी युक्ति (उपाय) कही गई है।।6।।

इदं यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते।
इयमस्य धम्यते नालीर अयं गीर्भिः परिष्कृतः।।७।।

यह यम के नियन्ता आदित्य का अथवा वैवस्वत का यह सदन है। ऐसा कहा जाता है कि यह सदन देवनिर्मित है। यहाँ यम की प्रसन्नता के लिए वेणु (वाँसुरी) बजाया जाता है। तीन स्तुतियों से यहाँ यम को प्रसन्न किया गया है।।7।।

लेखकों से निवेदन

2015 ई. से धर्मायण को अपने नये रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रस्ताव है। अगले अंक से शोधपरक आलेख के साथ पाठकों द्वारा मिले सुझावों के अनुरूप कुछ स्थायी-स्तम्भ भी प्रकाशित किये जायेंगे। इन स्थायी-स्तम्भों का स्वरूप इस प्रकार है:

1. **नमसा विधेम**- संस्कृत के श्लोकों में देवस्तुति, हिन्दी अनुवाद सहित, अप्रकाशित 2. **देवस्तुति**- हिन्दी में छन्दोबद्ध प्राचीन अथवा आधुनिक भक्तिपरक कविताएँ। 3. **शोधपरक आलेख** 4. **प्रेरक-पुरुष**। सन्तों, महापुरुषों की जीवनी। 5. **प्रेरक-प्रसंग** 6. **अलौकिक अनुभूति** 7. **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**। आयुर्वेद से घरेलू नुस्खे 8. **ज्योतिष-चर्चा** 9. **आस्था के केन्द्र** 10. **संस्कृत भाषा-परिचय** 11. **धार्मिक शंका-समाधान** 12. **धार्मिक पुस्तक समीक्षा** 13. **धरोहर** 14. **पाठकीय प्रतिक्रिया** 15. **तीर्थयात्रा-वृत्तान्त।**

अतः सुधी लेखकों से निवेदन है कि उक्त स्तम्भों के लिए अपने मौलिक तथा अप्रकाशित अप्रसारित आलेख हमें प्रेषित करें। रचनाओं की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। आपकी रचनाओं में राजनीति की कोई बात नहीं होनी चाहिए। सामाजिक सद्भाव, धार्मिक उदारता, भारतीय गरिमामयी संस्कृति आदि की झलक हमारी पत्रिका की पहचान है। टंकित या हस्तलिखित रचनाएँ स्वीकार्य हैं। टंकित आलेख mahavirmandir@gmail.com पर भेज सकते हैं। लेखक अपना फोटो एवं साहित्यिक परिचय अवश्य भेजें। यदि आलेख में कोई फोटो डाला गया हो तो उसका .jpg फाइल ईमेल से अवश्य भेजें। रचनाओं के लिए मन्दिर की ओर से सम्मानकी की व्यवस्था है। अपना पत्राचार पता अवश्य लिखें।

इनके अतिरिक्त 'धर्मायण' के पाठक नियमित रूप से **महावीर मन्दिर समाचार परिक्रमा** से भी अवगत होते रहेंगे।

रुचिकृत पितृ-स्तुति

हिन्दी अनुवाद- भवनाथ झा

यदि हम सभी ईश्वर की संतान हैं तो हमारे पूर्वज, ईश्वर और हमारे बीच की योजक कड़ी हैं। अनादि काल से यह प्रजातन्तु फैलता रहा है तब जाकर हमारा जन्म हुआ है, हमारे बच्चे है, हमारा परिवार है। हम उस योजक-तन्तु को भूल नहीं सकते। सनातन धर्म की मान्यता रही है कि हमारे मृत पूर्वज भी हमें आशीर्वाद देते है, वे भी देवता के समान हमारे वन्दनीय हैं।

प्राचीन काल में रौच्य नामक 13वें मन्वन्तर के प्रजापति रुचि ने पितर की स्तुति कर समृद्धि पायी थी तथा अगले जन्म में मन्वन्तर के स्वामी बने।ये इतने विख्यात हुए कि श्राद्धकर्म में इनका नाम लिया जाता है। वे विरक्त होकर संसार में विचरण करते थे।उन्होंने अपना घर नहीं बसाया। उन्हें किसी भी ऐश्वर्य भोगों आदि साधनों में स्पृहा-लिप्सा नहीं रही। उनके इस आचरण से उनके पितर बड़े सोच में पड़ गए और उन्होंने रुचि को कर्तव्य बोध कराने का निर्णय लिया ताकि संसार का कल्याण हो सके। पितरों ने रुचि से कहा, 'बेटा! गृहस्थ पुरुष समस्त देवताओं, पितरों, ऋषियों और अतिथियों की पूजा करके पुण्यमय लोकों को प्राप्त करता है। वह 'स्वाहा' के उच्चारण से देवताओं को, 'स्वधा' शब्द से पितरों को तथा अन्नदान आदि से समस्त प्राणियों व अतिथियों को उनका मान समर्पित करता है। अत: तुम गृहस्थ आश्रम स्वीकार करो तथा विवाह करके संतान उत्पन्न करो। इसी में तुम्हारा कल्याण होगा अन्यथा तुम्हें जन्म-जन्मान्तर कष्ट उठाना पड़ेगा। बेटा! जो कर्म आसक्ति रहित होकर किया जाता है, वह बंधन का हेतु नहीं बनता। कर्म का पालन करते हुए जो मनुष्य संयम करते हैं, उन्हें मोक्ष प्राप्त होता है। अत: हमारा कहना मानकर विधिपूर्वक स्त्री-परिग्रह करो। इसी में सब प्रकार से भलाई है।' इतना कहकर वे अदृश्य हो गए।

पितरों के इस आदेश से रुचि बहुत उद्विग्न हो गए। बहुत सोच-विचार के बाद अंत में उन्होंने पितरों की बात को ठीक समझा। किन्तु तपस्या से उनका शरीर जर्जर हो गया था। उनकी चिंता थी कि ऐसे में कौन उन्हें अपनी कन्या देगा? तभी पितरों ने लीला से उसकी बुद्धि में प्रेरणा की कि तुम ब्रह्माजी की उपासना करो, वे पितामह हैं, समस्त लोकों के पितर हैं, उनकी कृपा से तुम्हारा मार्ग प्रशस्त होगा। इस अज्ञात प्रेरणा स्वरूप उन्होंने ब्रह्माजी की आराधना आरंभ कर दी। ब्रह्माजी महात्मा रुचि के तप से संतुष्ट हो गए तथा प्रसन्न होकर उन्हें यथेष्ट वर प्रदान किया और कहा कि तुम श्रेष्ठ पत्नी की प्राप्ति हेतु अपने पितरों की स्तुति करो। ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे वे संतुष्ट होकर न दे सकें। रुचि ने ब्रह्माजी के कथनानुसार एक नदी के एकान्त तट पर पहले पितरों का तर्पण किया और फिर पूर्ण श्रद्धा व विश्वास से उनकी स्तुति की। उस समय रुचि ने जो स्तुति की उसे '**पितृ-स्तोत्र**' का नाम दिया गया। तभी उसके समक्ष एक बहुत ऊँचा तेज:पुंज प्रकट हुआ, जो पूरे आकाश में व्याप्त हो गया। तत्पश्चात् उस तेज से पितर प्रकट हुए। रुचि ने फल, फूल तथा अन्य जो भी सामग्री उन्हें अर्पित की उन्होंने वह सहर्ष स्वीकार करके ग्रहण की। फिर पितरों ने उसे कोई भी वर माँगने को कहा तो उसने अभिलषित पत्नी-प्राप्ति का वर माँगा। पितरों ने कहा, 'तुम्हें शीघ्र ही एक दिव्य मनोहर पत्नी प्राप्त होगी और उससे उत्पन्न तुम्हारा पुत्र 'मनु' होकर संपूर्ण पृथ्वी का स्वामी बनेगा। तुम्हारा सब प्रकार अभ्युदय हो।' ऐसा कहकर वे अंतर्ध्यान हो गए।

महात्मा रुचि पितरों की इस लीलामयी कृपा पर मुग्ध हो ही रहे थे कि उसी समय नदी के भीतर से, सभी सुलक्षणों से सम्पन्न एक मनोहर कन्या को लेकर प्रम्लोचा नामक अप्सरा प्रकट हुई और रुचि से प्रार्थना करने लगी, 'महात्मन् यह मेरी अत्यन्त प्रिय तथा सभी प्रकार से मनोहर कन्या है। यह वरुण के पुत्र महात्मा पुष्कर से उत्पन्न हुई है। मैं इस सुन्दर कन्या को तुम्हें, पत्नी बनाने के लिए समर्पित करती हूं। इसे ग्रहण करो। इससे तुम्हें एक महान् पुत्र की प्राप्ति होगी जो 'मनु' नाम से प्रसिद्ध होगा।' रुचि विस्मित होकर सोचने लगे कि पितरों ने भी ऐसा ही कहा था। अतः उनका वर अमोघ था। फिर रुचि ने 'तथास्तु' कहकर प्रम्लोचा की बात स्वीकार कर ली। तदन्तर प्रम्लोचा ने अपनी कन्या को महर्षियों के सान्निध्य में वहीं नदी तट पर रुचि को सविधि प्रदान किया। समय से महात्मा एक गृहस्थी बना पितरों की कृपा से, ताकि संतान-परम्परा का क्रम निरन्तर बना रहे। कुछ समय पश्चात् रुचि के घर एक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। रुचि का पुत्र होने से वह 'रौच्य-मनु' के नाम से विख्यात हुआ। इनकी कथा मार्कण्डेय पुराण में वर्णित है। उनके द्वारा की गयी पितृ-स्तुति यहाँ हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित है।

॥ रुचिरुवाच॥

नमस्येऽहं पितृञ्छ्राद्धे ये वसन्त्यधिदेवताः।
देवैरपि हि तर्प्यन्ते ये च श्राद्धे स्वधोत्तरैः॥१॥

पितृ श्राद्ध में जो देवता वास करते हैं, जो स्वधा के बाद देवों से तृप्त किये जाते हैं, उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ।।1।।

नमस्येऽहं पितृन्स्वर्गे ये तर्प्यन्ते महर्षिभिः।
श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्या भुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः॥२॥

भुक्ति-मुक्ति चाहनेवाले मनोमय श्राद्ध के द्वारा भक्तिपूर्वक महर्षियों से जो स्वर्ग में तृप्त किये जाते हैं, ऐसे पितरों को मैं प्रणाम करता हूँ।।2।।

नमस्येऽहं पितृन्स्वर्गे सिद्धाः सन्तर्पयन्ति यान्।
श्राद्धेषु दिव्यैः सकलैरुपहारैरनुत्तमैः॥३॥

श्राद्धों में सबसे सुन्दर दिव्य सभी उपहारों से सिद्ध लोग जिनको स्वर्ग में तृप्त करते हैं, उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ।।3।।

नमस्येऽहं पितृन्भक्त्या येऽर्च्यन्ते गुह्यकैरपि।
तन्मयत्वेन वाञ्छद्भिर्ऋद्धिमात्यन्तिकीं पराम्॥४॥

भक्ति पूर्वक तन्मय हो परा आदित्य को चाहने वाले गुह्यकों द्वारा जो पितर पूजित होते हैं, उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ।।4।।

नमस्येऽहं पितृन्मर्त्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा।
श्राद्धेषु श्रद्धयाभीष्टलोकप्राप्तिप्रदायिनः॥५॥

अभीष्ट (मनावाञ्छित) लोक को देनेवाले जो पृथ्वी पर श्राद्धों में सदा श्रद्धा पूर्वक पूजे जाते हैं, ऐसे पितरों को मैं प्रणाम करता हूँ।।5।।

नमस्येऽहं पितृन्विप्रैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा।
वाञ्छिताभीष्टलाभाय प्राजापत्यप्रदायिनः॥६॥

वाञ्छित-अभीष्ट की प्राप्ति के लिए प्राजापत्य सदृश फल को देने वाले जो पृथ्वी पर सदा विप्रों से पूजे जाते हैं, ऐसे पितरों को मैं प्रणाम करता हूँ।।6।।

नमस्येऽहं पितृन्ये वै तर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः।
वन्यैः श्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिर्धूतकिल्बिषैः॥७॥

जंगल में रहने वाले एवं अपनी तपस्या से निश्चित रूप से पापों को दूर करने वाले वन्यों के द्वारा जो तृप्त किये जाते हैं, उन पितरों को मैं प्रणाम करता हूँ।।7।।

नमस्येऽहं पितृन् विप्रैर्नैष्ठिकव्रतचारिभिः।
ये संयतात्मभिर्नित्यं संतर्प्यन्ते समाधिभिः॥८॥

नैष्ठिक व्रत का आचरण करनेवाले, अपने में संयत और समाधियों विप्रों के द्वारा जो तृप्त किये जाते हैं, ऐसे पितरों को मैं प्रणाम करता हूँ।।8।।

नमस्येऽहं पितृञ्छ्राद्धैः राजन्यास्तर्पयन्ति यान्।
कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकत्रयफलप्रदान् ॥९॥

तीनों लोकों के फलों को देनेवाले जिन पितरों को क्षत्रिय लोग अशेष कव्यों से विधिवत तृप्त करते हैं, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ।।9।।

नमस्तेऽहं पितृन् वैश्यैरर्च्यते भुवि ये सदा।
स्वकर्माभिरतैर्नित्यं पुष्पधूपान्नवारिभिः॥१०॥

पुष्प, धूप, अन्न और जल के द्वारा पृथ्वी पर अपने कार्यों में सदा संलग्न वैश्यों के द्वारा जो सदा पूजे जाते हैं, मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूँ।।10।।

नमस्येहं पितृञ्छ्राद्धैर्ये शूद्रैरपि भक्तितः।
सन्तर्प्यन्ते जगत्यत्र नाम्ना ख्याताः सुकालिनः॥११॥

श्राद्ध में सुकाली नाम से ख्यात जो पितर इस संसार में भक्ति-पूर्वक शूद्रों के द्वारा सदा पूजे जाते हैं, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ।।23।।

नमस्येऽहं पितृञ्छ्राद्धैः पाताले ये महासुरैः।
सन्तर्प्यन्ते स्वधाहारास्त्यक्तदम्भमदैः सदा।।१२।।

पाताल में रहने वाले अपने स्वधा-आहार एवं अहंकार को त्याग देनेवाले महासुरों से जो पितर श्राद्ध में तृप्त किये जाते हैं, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ।।12।।

नमस्येऽहं पितृञ्छ्राद्धैरर्च्यन्ते ये रसातले।
भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैः कामानभीप्सुभिः।।१३।।

अपनी मनोभिलाषाओं को चाहनेवाले, रसातल में रहनेवाले सभी नागों से जो पितर श्राद्धों में विधिवत् पूजे जाते हैं, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ।।13।।

नमस्येऽहं पितृञ्छ्राद्धैः सर्पैः सन्तर्पितान् सदा।
तत्रैव विधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितैः।।१४।।

विविध मंत्र, भोग, सम्पत्ति से युक्त श्राद्ध के द्वारा जो सर्पों से सदा तृप्त किये जाते हैं, ऐसे पितरों को मैं प्रणाम करता हूँ।।14।।

पितॄन् नमस्ये निवसन्ति साक्षाद्ये देवलोके च तथान्तरिक्षे।
महीतले ये च सुरादिपूज्यास्तेमे प्रतीच्छन्तु मयोपनीतम्।।१५।।

मैं देवादिकों से पूज्य उन पितरों को प्रणाम करता हूँ जो देवलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी पर साक्षात् निवास करते हैं। वे पितर मेरे द्वारा अर्पित वस्तुओं को स्वीकार करें।।15।।

पितॄन् नमस्ये परमात्मभूता ये वै विमाने निवसन्ति मूर्त्ताः।
यजन्ति यानस्तमलैर्मनोभि र्योगीश्वराः क्लेशविमुक्तिहेतून्।।१६।।

आकाश में सदा विमान पर आरूढ़ रहनेवाले परमात्माभूत मूर्त्त योगेश्वर (योगियों में श्रेष्ठ) जिनकी पूजा करते हैं, ऐसे पितरों को मैं प्रणाम करता हूँ।।16।।

पितॄन् नमस्ये दिवि ये च मूर्त्ताःस्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ।
प्रदानशक्ताः सकलेप्सितानां वमुक्तिदायेऽनभिसंहितेषु।।१७।।

मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूँ जो आकाश में मूर्त्त हैं, स्वधाभुज (स्वधा को खानेवाले) हैं, काम्य फलों को देनेवाले हैं। जो सभी इच्छित फलों को देने में समर्थ हैं एवं अनासक्त लोगों को विमुक्ति देनेवाले हैं।।17।।

तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरः समस्ता इच्छावतां ये प्रदिशन्ति कामान्।
सुरत्वमिन्द्रत्वमतोऽधिकं वा सुतान् पशून् स्वानिवलंगृहाणि।।१८।।

इस श्राद्ध में इच्छावान् लोगों की सभी इच्छाओं की पूर्त्ति करनेवाले पितर तृप्त हों, जो पुत्र, पशु, धर, देवत्व एवं इन्द्रत्व से भी अधिक देनेवाले हैं।।18।।

सोमस्य ये रश्मिषु येऽर्कबिम्बे शुक्ले विमाने च सदा वसन्ति।
तृप्यन्तु तेऽस्मिन् पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिना पुष्टिमितो व्रजन्तु॥१९॥

जो सोम की किरणों में, सूर्य बिम्ब में, पवित्र विमानों में सदा निवास करते हैं, वे (पितर) इस अन्न, जल से तृप्त हों एवं गन्धादिकों से पुष्टि प्राप्त करें।।19।।

येषां हुतेऽग्नौ हविषा च तृप्तिर्ये भुञ्जते विप्रशरीरसंस्थाः।
ये पिण्डदानेन मुदं प्रयान्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन् पितरोऽन्नतोयैः॥२०॥

जो अग्नि में दिये हविष् (धृत) से तृप्म होते हैं, जो विप्र शरीर धारण कर खाते हैं, जो पिण्ड दान से प्रसन्न होते हैं, वे सभी पितर इस अन्य-जल से तृप्त हों।।20।।

ये खड्गिमांसेन सुरैरभीष्टैः कृष्णैस्तिलैर्दिव्यमनोहरैश्च ।
कालेन शाकेन महर्षिवर्यैः संप्रीणितास्ते मुदमत्र यान्तु॥२१॥

देवताओं, श्रेष्ठ महर्षियों द्वारा दत्त दिव्य, मनोहर काले तिलों से, गैंडे के मांस से, कालशाक से जो पूजे जाते हैं, वे (पितर) यहाँ (इस श्राद्ध में) प्रसन्न हों।।21।।

कव्यान्यशेषाणि च यान्यभीष्टान् यतीव तेषाममरार्चितानाम्।
तेषां तु सान्निध्यमिहास्तु पुष्पगन्धान्नभोज्येषु मया कृतेषु॥२२॥

देवताओं से अर्चित जो पितरगण हैं, उनके समीप अशेष कव्य तथा अन्य भोज्य सामग्रियाँ पुष्प, गन्ध, अन्न उपस्थित करता हूँ।।22।।

दिने दिने ये प्रतिगृह्णतेऽर्च्चां मासान्तपूज्या भुवि येऽष्टकासु।
ये वत्सरान्तेऽभ्युदये च पूज्याः प्रयान्तु ते मे पितरोऽत्र तृप्तिम्॥२३॥

जो प्रतिदिन पूजा ग्रहण करते हैं, जो मासान्त में पूजे जाते हैं, जो पृथ्वी पर अष्टकों में पूजे जाते हैं, जो वर्ष के प्रारम्भ और अन्त में पूजे जाते हैं, वे सभी पितर यहाँ (इस श्राद्ध में) तृप्त हों।।23।।

पूज्या द्विजानां कुमुदेन्दुभासो ये क्षत्रियाणां च नवार्कवर्णाः।
तथा विशां ये कनकावदाता नीलीनिभाः शूद्रजनस्य ये च॥२४॥

जो पितर कुमुद और चन्द्रमा सदृश ब्राह्मण से पूज्य हैं, जो नये उदयकालिक सूर्य के समान रक्त वर्ण क्षत्रियों से पूज्य हैं जो स्वर्ण कान्ति के समान वैश्यों से पूज्य हैं और जो नीली समान शूद्र जन से पूज्य हैं।।24।।

तेऽस्मिन् समस्ता मम पुष्पगन्धधूपान्नतोयादिनिवेदनेन।
तथाग्निहोमेन च यान्तु तृप्तिं सदा पितृभ्यः प्रणतोऽस्मि तेभ्यः॥२५॥

वे (पितर) यहाँ पुष्प, गन्ध, धूप, अन्न और जल से तृप्त हों। वे पितर मेरे द्वारा किये गये अग्निहोम से तृप्त हों, मैं उन्हें सदा प्रणाम करता हूँ।।25।।

ये देवपूर्व्वाण्यतितृप्तिहेतोरश्नन्ति कव्यानि शुभाहुतानि।
तृप्ताश्च ये भूतिसृजो भवन्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः।।२६।।

जो देवता अत्यन्त तृप्ति के लिए पहले दिये गये कव्यों को खाते हैं ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, मैं उन सबको प्रणाम करता हूँ।।26।।

रक्षांसि भूतान्यसुरांस्तथोग्रान् निर्नाशयन्तस्त्वशिवं प्रजानाम्।
आद्याः सुराणाममरेशपूज्या स्तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः।।२७।।

राक्षस, भूत, देवता सभी के अनिष्ट को (वे पितर) नाश करें। सभी पूज्य, आद्य इन्द्रादि देवता तृप्त हों। मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ।।27।।

अग्निष्वात्ताबर्हिषद आज्यपाः सोमपास्तथा।
व्रजन्तु तृप्तिं श्राद्धेऽस्मिन् पितरस्तर्पितामया।।२८।।

अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, आज्यप तथा सोमप नामों वाले सभी पितर इस श्राद्ध में तृप्त हों, जिनके लिए मैंने तर्पण किया है।।28।।

अग्निष्वात्ताः पितृगणाः प्राचीं रक्षन्तु मे दिशम्।
तथा बर्हिषदः पान्तु याम्यां ये पितरः स्मृताः।।२९।।

पूर्व दिशा में अग्निष्वात्त (नामक) पितर गण मेरी रक्षा करें। दक्षिण दिशा में बर्हिषद् नामक पितर मेरी रक्षा करें।।29।।

प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपि सोमपाः।
रक्षोभूतापिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः ।।३०।।

पश्चिम में आज्यप और उसी तरह उत्तर में सोमप भूत, पिशाच और असुरगणों के दोष से मेरी रक्षा करें।।30।।

सर्वतश्चाधिपस्तेषां यमो रक्षां करोतु मे।
विश्वो विश्वभुगाराध्यो धर्म्मो धन्यशुभाननः।।३१।।

भूतिदो भूतिकृद्भूतिः पितृणां ये गणा नव।
कल्याणः कल्यतां कर्त्ता कल्यः कल्यतराश्रयः।।३२।।

कल्यताहेतुरनघः षडिमेते गणाः स्मृताः।
वरोवरेण्यो वरदः पुष्टिदस्तुष्टिदस्तथा।।३३।।

विश्वपाता तथा धाता सप्तैवैते तथा गणाः।
महान् महात्मा महितो महिमावान् महाबलः॥३४॥

गणाः पञ्च तथैवैते पितृणां पापनाशनाः।
सुखदो धनदश्चान्यो धर्मदोऽन्यश्च भूतिदः॥३५॥

पितृणां कथ्यते चैतत्तथा गणचतुष्टयम्।
एकत्रिंशत्पितृगणा यैर्व्याप्तमखिलं जगत्।
तेमेऽनुतृप्तास्तुष्यन्तु यच्छन्तु च सदाहितम्॥३६॥

विश्व, विश्वमुक्, आराध्य, धर्म, शुभानन, भूतिद, भूतिकृत, भूति जो नव संख्य पितृगण हैं, इनके अधिपति यम चारों ओर से मेरी रक्षा करें। कल्याण, कल्यता कर्त्ता, कल्य, कल्यताश्रय, कल्याण हेतु और अनघ- ये छः गण कहे गये हैं। अथवा वर, वरेण्य, वरद, पुष्टिद, तुष्टिद, विश्वपा, घाता ये भी सात गण ही हैं। महान्, महात्मा, महितः, महिमावान, महाबल- ये पाँच गण पितरों के (भी) पाप नाश करनेवाले हैं। सुखद, धनद, धर्मद, भूतिद- ये भी पितरों के ही चार गण हैं। (इस तरह) एकतीस (31) पितरगणों से सारा संसार व्याप्त है, ये सभी अनुतृप्त हैं (अतः) प्रसन्न हों और सदा कल्याण करें।।31-36।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रौच्यमन्वतरे रुच्युपाख्याने पितृस्तवनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः॥९३॥

अब लौं नसानीं, अब ना नसैहौं।

श्री सुरेश चन्द्र मिश्र

मनुष्य गलतियाँ करता है, लेकिन यदि उसे यह आभास हो जाये कि यह उसकी गलती थी, तो गलतियाँ भी पाठ बन जाती है। उन गलतियों से वह कुछ सीखता है, और आगे बढने के लिए नया अध्याय आरम्भ करता है। भगवान् की शरणागति के समय भी लगभग इसी प्रकार के भाव की आवश्यकता होती है तभी तो सन्तकवि गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं- ''अब लौं नसानी अब ना नसैहौं।'' अर्थात् अबतक मैं गलत था अब गलती नहीं करूँगा। सम्राट् अशोक ने भी कलिंग युद्ध के बाद अपनी गलती स्वीकारी थी, तभी तो वह देवानां प्रियदर्शी और अशोक महान् बन सका। सहायक संपादक श्री सुरेशचन्द्र मिश्र ने गोस्वामी तुलसी के इस उद्घोष को केन्द्र में रखकर शृंखलाबद्ध कथाएँ लिखीं हैं, जिनमें सम्राट् अशोक की यह कथा यहाँ इसी सन्दर्भ में प्रस्तुत है।

हृदय चाहे मानव का हो या पशु-पक्षी का, बड़ा संवेदनशील होता है। ऐसा भी सुना जाता है कि पेड़-पौधे तक में भी हर्ष-विषाद के भाव प्रच्छन्न रूप से पाये जाते हैं। खैर, पेड़-पौधे की समझदारी मुझे कम है, अतः उसकी बात ही मैं क्या करूँ। हाँ, मानव, हूँ, हृदय है, इसकी भाव-दशा की बात स्पष्टता से कह सकता हूँ। पशु-पक्षी हमारे आस-पास के जीव हैं, अतः उनके राग-विराग का अंदाज़ा बखूबी लगा सकता हूँ।

कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि लाठी की चोट, फूल-सी लगती है, और फूल की चोट भी हृदय को मथ देनेवाली, अविस्मरणीय पीड़ा बन जाती है। राजा हो या रंक, सब अपने आस-पास की घटनाओं से प्रभावित होते हैं। इतिहास अथवा प्रागैतिहासिक काल सें ही हमें कुछ ऐसे भी पात्र मिले हैं, जिनकी ज़िन्दगी का इतिहास बड़ा विचित्र है। इस संदर्भ में आज मैं एक ऐसे राजा की कहानी उपस्थापित करता हूँ, जिसका जीवन अनेक उतार-चढ़ावों से गुज़रा पर, अन्ततः, वह शुभ क्षण भी आया, जब विश्राम ने गले लगाया, चिर स्थिरता मिली, अनेक सिद्धियों ने तिलक मढ़े, पारावार ने वन्दन किया, और इतिहास ने अपने अमर पन्नों पर, हर्षित हो उनका नाम स्वर्णाक्षरों में दर्ज़ कर लिया।

पर हाँ, एक वह भी समय था जब लोग उनके नाम की याद कर अतिशय घृणा से भर जाते थे, तन सिहर उठता था, रोअटें खड़े हो जाते थे, और सारे वातावरण में एक भय का भूत-सा दौड़ने लगता था। बच्चे, बूढ़े, स्त्रियाँ, अपंग-सभी चीखने लगते थे। खिले फूल मुर्झा जाते थे। हरे पत्ते सूख जाते थे, और टहनियाँ-टहनियाँ रोने लगतीं थीं।

अशोक, हमारे भारतीय इतिहास के एक वैसे ही राजा हुए, जो **''वज्रादपि कठोराणि मृदूणि कुसुमादपि''** की उक्ति को अक्षरशः चरितार्थ करते हैं। अशोक का जन्म संवत्सर, एवं उनकी बाल-कथाएँ,

बहुत स्पष्टता से नहीं कही जा सकतीं, लेकिन इतना स्पष्ट है कि ई.पू. 273 में वे पाटलिपुत्र के सम्राट् बने। अशोक के पिता का नाम बिन्दुसार और माता का नाम शुभद्रांगी था। सम्राट् चन्द्रगुप्त उनके बाबा थे, और परदादी, मुरा थी। मुरा के नाम पर ही इस वंश का नाम मौर्य पड़ा।

चण्डाशोक

अशोक के आरम्भिक जीवन के बहुत ठोस प्रमाण नहीं मिलने के कारण उनके जीवन की बहुत सारी कहानियाँ अतिरंजित हैं। बौद्ध गाथाओं में बहुत सारी कहानियाँ मिलती हैं, लेकिन ये गाथाएँ भी एकमत नहीं हैं। कहा जाता है कि उनके पिता बिन्दुसार को सोलह रानियाँ और सौ पुत्र थे। अशोक ने सिंहासनारोहण के पूर्व अपने अनठानवे भाइयों का वध कर पाटलिपुत्र के समीप एक कुआँ में डाल दिया था। आज भी यह कुआँ पाटलिपुत्र में 'अगम कुआँ' के नाम से ख्यात है। हाँ, इसमें कितनी वास्तविकता है, नहीं कही जा सकती, लेकिन एक सामंजस्य अवश्य प्रतीत होता है, जिसमें सत्यता मढ़ी जा सकती है। अशोक, अपने पिता बिन्दुसार द्वारा उज्जयिनी के राजा बनाया गये थे, पर जब बिन्दुसार की मृत्यु हुई, पाटलिपुत्र आकर अपने बड़े भाई 'सुसीम'(सुगाम, सुमन) के साथ उन्होंने भयानक युद्ध किया था, जो गद्दी का वास्तविक अधिकारी था। सुगाम ने अनठानवे भाइयों एवं सेनाओं के साथ अशोक का कड़ा प्रतिवाद किया। सम्भवतः, इस कारण ही युद्ध में उन्होंने अपने 98 भाइयों का वध किया हो। हाँ, इतनी बात अवश्य थी कि वे अपने सभी भाइयों में सबसे चतुर, बुद्धिमान् और साहसी थे। सम्राट् बिन्दुसार ने इस बात की परीक्षा भी कई बार ली थी। सम्राट् ने साधु पिंगलवत्साजीव को आज्ञा दी थी कि आप इन राजकुमारों की परीक्षा लेकर मुझे बताएँ कि कौन मेरा वास्तविक उत्तराधिकारी होने के योग्य हैं।

प्रियदर्शी अशोक

अशोक दिन-रात दीन-दुःखियों की सेवा में लगे रहते थे। ब्राह्मणों की आज्ञा का पालन करते थे, और मधुरभाषी तथा गम्भीर थे। जब इस बालक का जन्म हुआ था, तब बिन्दुसार ने अपनी साम्राज्ञी से पूछा ,'प्रिये, इस बालक का नाम क्या रखा जाए?'' पत्नी ने कहा, ''इसके जन्म लेने से मेरा शोक दूर हुआ है, अतः इसका नाम 'अशोक' रखा जाए।'' समय पाकर दूसरा पुत्र हुआ, जिसका नाम 'विताशोक' रखा गया, जिसको इतिहास में कहीं-कहीं 'तिष्य' भी कहा जाता है।

एक दिन पिंगलावत्साजीव ने सभी राजकुमारों को सोने के बने हुए मंडप में बुलाया। सभी राजकुमार सज-धज कर रथ में पधारे, परन्तु राजकुमार अशोक हाथी पर सवार होकर मंडप में पधारे। सभी राजकुमारों को सोने-चाँदी के वर्तनों में स्वादिष्ठ खाना दिए गए, परन्तु अशोक को मिट्टी के वर्तनों में दही और चावल दिए गए। अशोक, अपमान सहते हुए भी गंभीर बने रहे, और महाराज की हर आज्ञा

का विनम्रतापूर्वक पालन करते रहे। पिंगलावत्साजीव ने अशोक के सभ्याचरण एवं विनम्रता की बड़ाई करते हुए राजा से कहा कि राजकुमार अशोक ही हर तरह से आपके उत्तराधिकारी होने के योग्य हैं।

एकबार तक्षशिला में भयंकर विद्रोह फैल गया। प्रजा आक्रोशित होकर बार-बार राजा के विरुद्ध नारे लगा रही थी, यहाँ तक कि राजा के अधिकारियों और सैनिकों को भी लोगों ने मार भगाया था। राजा ने श्रेष्ठ मन्त्रियों एवं पार्षदों की सभा बुलाई, मन्त्रणा की। सब ने एकमत से वीर एवं साहसी राजकुमार अशोक को सेना लेकर भेजने की सलाह दी। सम्राट् की आज्ञा का पालन कर अशोक वहाँ गये। इसकी जानकारी होते ही तक्षशिला की प्रजा में खुशी की लहर फैल गई। राजमार्ग पर तोरण सजाये गये, नृत्य-गान का आयोजन किया गया, पंडितों ने ऋचाएँ पढ़ीं और दूर्वाक्षत छींट आशीर्वाद दिये। साथ आए सैनिकों के लिए भी ठहरने के उत्तम प्रबन्ध किए गए। अशोक ने सभा अयोजित की, जिसमें नगरसेठ ने आज्ञा पाकर अपनी बात इस प्रकार रखी, ''प्रियदर्शी अशोक, न तो हम आपके विरुद्ध हैं, और न सम्राट् बिन्दुसार के प्रति ही कोई शिकायत है। यहाँ राज्य करनेवाले आपके कर्मचारी बड़े दुष्ट हैं। ये समय-समय पर हमें अपमानित करते हैं। उनका अपमान हम सह न सके और यह विद्रोह फैल गया। अब आप शासन की बागडोर सँभालें। मैं नगरवासियों की ओर से आपको पूरा-पूरा विश्वास दिलाता हूँ कि आपकी हर आज्ञा का पालन किया जायेगा।'' नगरसेठ के कहने के बाद राजकुमार अशोक ने खुश होकर अपनी बात यूं कही, ''तक्षशिला निवासियो! जो-जो भूलें हमारे अधिकारियों से हुईं हैं, उसके लिए मैं आप सब से क्षमा चाहता हूँ। साथ-ही-साथ, मैं विश्वास दिलाता हूँ कि आगे आप सब के साथ पूरा न्याय होगा। आप सबने मुझे पूरा प्रेम दिया इसके लिए आप सब को धन्यवाद देता हूँ। आपने सच्चे हृदय से हम सब का स्वागत किया इससे मौर्यवंश और तक्षशिला निवासियों का बहुत गहरा सम्बन्ध सदा के लिए जुड़ गया है।'' कुछ दिनों तक राजकुमार अशोक ने वहीं रहकर तक्षशिला वासियों की सेवा की, बाद सम्राट् की आज्ञा पाकर वे पाटलिपुत्र लौट आए। इतने समय तक उनका यश चारों ओर फैल चुका था। सम्राट् ने उन्हें उज्जैन के राज सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया। वे अब उज्जैन वासियों के भी कण्ठहार बन गए।

कुछ दिनों बाद, राज कर्मचारी की मनमानी के कारण तक्षशिला फिर लहर उठी। इसबार, राजकुमार 'सुगाम' को भेजा गया। सुगाम को युद्ध करना पड़ा, और असफल हो वे वापस आ गए। बाद, अशोक को भेजा गया। इनके जाने से विद्रोह शान्त हुआ।

कुछ दिनों बाद सम्राट् बिन्दुसार की मृत्यु हो गई। महामात्य (प्रधानमन्त्री) राधागुप्त ने पाटलिपुत्र की बागडोर अशोक को सौंप दी, और वे राजकुमार से सम्राट् बन गए। सम्भवतः, प्रधानमन्त्री की इसी मनमानी के कारण इनके सभी भाइयों ने अशोक के विरुद्ध संग्राम छेड़ दिया हो, जिसमें अशोक ने अपने 98 भाइयों का वध किया हो। इनकी इस क्रूरता से दिशाएँ काँपने लगीं, पृथ्वी थर्रा उठी और तब, इनका नाम 'चण्डाशोक' पड़ गया। हालाँकि मूर्द्धाभिषिक्त होने पर अशोक के व्यवहार में काफी अन्तर आया। राज्याभिषेक धूम-धाम से किया गया। तदुपरान्त, अशोक ने अपने पूर्वजों की रीति के अनुसार, अमात्य मण्डल की सहायता से शासन करना आरम्भ किया। अन्याय उन्हें पसंद नहीं था, और अपराधियों को कठोर दण्ड दिया जाता था। ब्राह्मण, श्रमण तथा विद्वानों का राजा समुचित समादर करते थे, तथा उन्हें सम्मानजनक धन-राशि देकर सदा प्रसन्न रखते थे। कहा जाता है कि वे तीन वर्षों तक साठ हजार ब्राह्मणों को नियमित भोजन कराते रहे।

सिंहासनारोहण के पूर्व अशोक उज्जयिनी के 'करमोलि' थे। ये इस पद पर ई. पू. 285 से 274 तक रहे। ई. पू. 284 में इन्होंने विदिशा की देवी से विवाह किया। जिनसे एक पुत्र महेन्द्र (ई. पू. 283) तथा एक पुत्री संघमित्रा (ई. पू. 281) हुई। ई. पू. 273 में वे पाटलिपुत्र के सम्राट् बने, किन्तु राज्याभिषेक तीन वर्ष बाद हुआ।

अशोक के जीवन की जिस महान् घटना को लिखना यहाँ मेरा अभिप्रेत है, वह है 'कलिंग युद्ध'। इसी युद्ध ने अशोक को अशोक न रहने दिया, 'चण्डाशोक' बना गया । इतिहास गवाह है, जितना भयंकर रक्तपात इस युद्ध में हुआ, उतना उस समय तक कभी न हुआ था। कहा जाता है कि इसमें 9 से 10 लाख सैनिक मारे गए, डेढ़ लाख पकड़े गए और जख्मी हुए।

कलिंग कई मायनों में सम्राट् अशोक के लिए बड़ा ही महत्त्वपूर्ण था। यह राज्य गोदावरी और महानदी के बीच बंगाल की खाड़ी के निकट था। इस राज्य के तीन ओर मौर्य साम्राज्य की सीमाएँ थीं। चौथी ओर सागर ठाटें मार रहा था। यहाँ के वीर सच बोलने वाले थे। ज़मीन बड़ी उपजाऊ थी। यहाँ का कपड़ा बड़ा महीन होता था। यहाँ का ढाका की मलमल प्रसिद्ध थी। कलिंग की राजधानी 'तोसाली' थी। चाह कर भी चन्द्रगुप्त इसे जीत नहीं पाये थे। यह मौर्य साम्राज्य के बीच एक ऐसा राज्य था, जिसकी अपनी शक्ति थी, अपार सेना थी, और सबसे बड़ी बात यह कि यहाँ का बच्चा-बच्चा मातृभूमि पर मर मिटने को तैयार था। अशोक की आखों में यह इसलिए भी खटकता था कि इस राज्य के लोग यदि विदेशी राजाओं से मिल गये तो कभी भी खतरा खड़ा हो सकता है।

अपने राज्याभिषेक के आठ वर्ष बाद एक विशाल सेना लेकर अशोक ने इस राज्य को घेर लिया, और अपना दूत कलिंगराज के पास भेज कर कहा,'' अब भी समय है, चाहो तो युद्ध रुक सकता है, नहीं तो बेकसूर लाखों लोग मारे जाएँगे, रक्त की नदियाँ बहेगी। मैं तुमसे युद्ध करने नहीं आया हूँ। मित्रता के लिए हाथ बढ़ाओ, मैं मित्रता का हाथ चाहता हूँ।'' सुना जाता है कि कलिंगराज ने तत्काल प्रजा की एक आम सभा बुलाई, और अशोक की बात सबके सामने रखी। सबने एक स्वर में कहा, ''महाराज, यह सब मौर्यवंशियों की चाल है, वे हमसे मित्रता चाहते हैं तो इसमें सेना की क्या ज़रूरत! फिर, खून की नदी बहेगी, यह कहने का क्या मतलब! महाराज, उनकी नीयत बुरी है। वे हमें छलने आये हैं। जबतक हम तक्षशिला वासियों के तन में साँस है, हम लड़ेंगें। जन्मभूमि हमें प्राण से भी प्यारी है।''

कलिंगराज ने कलिंगवासियों का पुनः हृदय टटोलने की नीयत से उठ कर कहा,''मेरे वीर सपूतो! मौर्य विशाल देश है, कलिंग छोटा है। यह युद्ध एक बड़े सम्राट् के साथ होगा, जिसमें विजय तो दूर, हमें विनाश और मृत्यु को आमन्त्रण देना है।'' इस पर सभी देशवासियों ने भौंहें तान, क्रोध में भरकर अपनी तलवारें खींच लीं। महाराज की आज्ञा पाकर सेनापति ने वीरतापूर्वक कहा,'' महाराज, आप सत्य कहते हैं। पर सच तो यह है कि हमने उनका क्या बिगाड़ा है, जो मौर्य सम्राट् हमें जीने नहीं देते? हम भले ही मिट जाएँगे परन्तु, किसी भी मूल्य पर अपनी स्वतंत्रता नहीं बेचेंगे। हमें भी तो संसार में जीने का अधिकार है।''

कलिंगराज ने सबका विचार जान, अशोक को स्पष्ट लिख भेजा, ''इस देश का बच्चा-बच्चा अपनी मातृभूमि पर बलि होना जानता है । आपको हमारी बरबादी से क्या लेना-देना, आप केवल अपना विस्तार चाहते हैं। अब, आपकी और हमारी मित्रता युद्धभूमि में होगी।''

बस क्या था, दोनों ओर की सेनाएँ युद्धभूमि में उतर दुश्मनों को काटने लगी। भयंकर रक्तपात हुआ। युद्धभूमि लाशों से पट गई। खून की नदियाँ बहने लगीं। रुण्ड-मुण्ड, लाशें, भाले, तलवार, गड़ासे सब-के-सब खून की धारा में बह चले। कोई किसी की सुध लेनेवाला नहीं था। अशोक की सेना गाँवों में घुसकर बच्चों-बूढ़ों तक को भी अपनी तलवार का आहार बना रही थी। कहा जाता है कि पेड़-पौधे भी जब तलवार की चोट खाकर कट जाते थे, तब उससे भी खून की धारा निकलने लगती थी।

गोपा नामकी एक स्त्री की गोद में उसका बच्चा सोया था, अशोक के क्रूर सैनिकों ने गोद से उसके बच्चे को छीन कर उसके अंग-अंग काट डाले। गोपा चिल्लाती रह गई, सैनिकों ने उसकी एक न सुनी। सैनिकों के चले जाने के बाद गोपा मृत तुल्य बच्चे के शेष धड़ को अपने आँचल में उठा कर जोर-जोर से रोती अशोक के शिविर के पास आकर ''अशोक का सर्वनाश हो, अशोक का सर्वनाश हो'' ऐसा कहती करुण क्रन्दन करने लगी। अशोक की रानी तिष्यरक्षिता, स्त्री का करुण विलाप सुन झाँकी। उसने स्त्री को अन्दर लाने का आदेश अपनी परिचारिका को दिया। गोपा अंदर आ, आँचल पसार, मृतक बच्चे को आगे रख दिया, और पुनः चिल्लाने लगी- ''पापी अशोक का सर्वनाश हो, पापी अशोक का सर्वनाश हो''। तिष्यरक्षिता ने कहा, ''देवि! किसने ऐसा किया''। राक्षस अशोक ने मेरे बच्चे का खून पिया। मेरा लाल राज्य नहीं चाहता था। मैंने अपने बच्चे को कहा था, ''लाल, तेरा खून इतना मीठा है कि राजा तक पीना चाहता है, और अधिक रक्त हो तो अपने नन्हें शरीर से निकाल कर सामने रख दे, ये सब मिल कर पी लें।'' इतना कहते-कहते गोपा गिर पड़ी।

तिष्यरक्षिता (रानी) ने उस स्त्री से कहा, ''देवि, तुम्हारे साथ न्याय होगा।'' गोपा ने फिर कहना आरम्भ किया, ''मुझे न्याय नहीं चाहिए। नही चाहिए। पाटलिपुत्र से न्याय उठ गया। इसके पिता को सैनिकों ने घेर कर मार डाला और जब मैं इसे बचाने लगी तो मुझसे छीनकर आपके राक्षसों ने पेट में भाला घुसेड़ दिया। मेरा छोटा राजा तुम्हारा राज्य नही चाहता था।'' तिष्यरक्षिता, स्त्री की इस दर्दनाक दशा से हिल गई। यूँ, वह पहले से भी युद्ध के पक्ष में नहीं थी।

अशोक के कान में भी स्त्री की आवाज़ गई। न जानें क्यों, आज पहली बार अशोक भी हतप्रभ-से नज़र आए। उनका रोम-रोम सिहर गया और एक गहरे चिन्तन में डूबे-से स्याह दीखने लगे। आँखें छलछला गईं। उनके अन्तर्मन में कौन-कौन-सी तरंगें उठने लगीं, यह कौन कह सकता! लेकिन हाँ, उन्होंने तलवार फेंक दी और कहा, ''देवि! आज से मैं तलवार नहीं उठाऊँगा, युद्ध नहीं करूँगा।'' सेनापति को आदेश दिया, युद्ध रोक दिया जाय। हालाँकि, तब तक कलिंग की अधिकांश सेना मारी जा चुकी थी, विजय श्री इनके गले में माला डाल चुकी थी।

अब अशोक, कभी युद्ध न करने की कसम खा, बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गए। प्रस्तर-शिलाओं में खुदाये उनके अहिंसा के उपदेश आज भी हमें उस परम ज्योति का दर्शन कराते हैं, जो अमंद है, अनवच्छिन्न है कालातीत है।

❑

दान करे कल्याण

पं. मार्कण्डेय शारदेय

'त्यक्तेन भुञ्जीथा:' अर्थात् त्यागपूर्वक भोग की सम्मति वेदप्रमाणित तो है ही सामान्य जन-जीवन में भी इसका मूल्य कम नहीं है। सृष्टि का प्रत्येक अंग एक-दूसरे के आदान-प्रदान से ही प्राणवान् है, जीवंत है। एक के त्याग से दूसरा और दूसरे के त्याग से तीसरा जीता है। अगर यह न होता तो पूरी सृष्टि ही ध्वस्त हो जाती । भला सोचिए, वृक्ष ऑक्सीजन देना बंद कर दे, सूर्य रोशनी देना बंद कर दे, धरती अन्न देना बंद कर दे, तथा बादल जल देना बंद कर दे तो क्या होगा ।

हम सभी एक-दूसरे के पूरक हैं। परजीवी भी हैं, परपोषी भी। हमें पता भी नहीं कि हम समस्त प्राणी एक-दूसरे का किस-किस रूप में उपकार करते हैं, कितना दान देते हैं तथा कितना उपकृत होते हैं; कितना दान लेते हैं। इसलिए सही है; 'भिखारी सारी दुनिया, दाता एक राम।' परंतु, दाता राम की संतान को तथा भिखारी को भी दान करना ही है। बिना दान किसी का कल्याण नहीं होनेवाला। विनिमय भी दान ही है, परंतु सकाम है। निष्काम दान तो कोई जीवन्मुक्त व विदेह ही कर सकता है। फिर भी देय वस्तु और दान-भावना की पवित्रता का परिमाण ही परिणाम तय कर सकता है।

सुना है, महाराज युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में बहुत खर्च हुआ था, बहुत दान हुआ था, परंतु कुरुक्षेत्र में ही रहनेवाले तथा खेतों में गिरे अन्न चुन-चुनकर जीविका चलानेवाले एक अतिदरिद्र ब्राह्मण परिवार के सेर भर आटे से हुए यज्ञ से वह यज्ञ तुच्छ था। इसका परिमापक न कोई यंत्र था, और न कोई विद्वान् संगणक ही, बल्कि यह एक नेवले का उद्घोष था, जिसका भूखे ब्राह्मण परिवार द्वारा कृत अतिथि-सेवा में गिरे ज्वार के कणों के स्पर्श से आधा शरीर सुनहला हो गया था। वह जगह-जगह धार्मिक आयोजनों में घूमता रहा, पर किसी यज्ञकर्ता या

दानवीर की पवित्रता से उसका पूरा शरीर सुनहला नहीं हो पाया, आधा-का-आधा ही सुनहला बना रहा। धर्मराज के महायज्ञ से भी आस पूरी नहीं हुई ।

दान के लिए धन की व संपन्नता की कम ही आवश्यकता होती है। आवश्यकता होती है तो केवल दाता के शील की। शीलवान् एक मुट्ठी भर भी दे दे तो दाता-ग्रहीता दोनों धन्य हो जाते हैं, और शीलहीन व्यक्ति करोड़ों का दान करके भी देय वस्तु को भी पवित्र नहीं कर सकता। इसका अर्थ यह नहीं कि केवल शीलवान् ही को दाता होना चाहिए, दु:शील को नहीं। दान तो सबका हितैषी है। वह त्याग की भावना प्रकट करता है, दया भरता है एवं उदारता उपजाता है, इसलिए 'करत-करत अभ्यास तें' के अनुभव-सिद्ध कथन के अनुसार अनुदार भी उदार तथा दु:शील भी सुशील बनने लगता है ।

हमारे यहाँ व्रत-उपवास का विधान है । धर्मशास्त्रों में इसका चाहे जो महत्त्व हो, परंतु प्रायोगिक रूप में हम अन्न-जल आदि का त्याग कर शरीर को सहनशील बनाते हैं, ताकि विपत्ति में भी हम जी सकें, टूट न जाएँ। इसके अतिरिक्त अपने एक दिन की भोजन-सामग्री की बचत करते हैं, जो दूसरे दिन दान कर किसी की क्षुधा भरने का काम करता है । सोचिए, यदि एक दिन किसी गाँव-शहर के सौ व्यक्ति एकादशी का व्रत कर दूसरे दिन अपने भोजन का हिस्सा सौ लोगों को देते हैं तो पहले सौ की बचत से दूसरे सौ का कल्याण स्वत: हो जाता है। अत: एक का त्याग दूसरे के लिए जीवन-रक्षक बन जाता है। ऐसा ही त्याग समाज का निर्माण करता है। नहीं तो केवल भोग-ही-भोग रहेगा तो समाज पशु-समूह हो जाएगा ।

व्यक्ति जब उच्चता या नीचता में मानकता स्थापित करता है, तब आम से खास हो जाता है । देव-दानव, राम-रावण, कृष्ण-कंस उच्चता-नीचता के ही मानक हैं । दाता भी सामान्य से विशेष हो जाता है । दधीचि ने देव-कार्य की सिद्धि के लिए सहर्ष अपनी हड्डियाँ दान कर दी थीं तो क्या यह साधारण कार्य है । सीमा पर शत्रुओं का मुकाबला करते सैनिक शहीद हो जाते हैं, मातृभूमि के लिए प्राण न्योछावर कर देते हैं, यह भी असाधारण है। गिलहरी रामकाज में शिलाकण ही लगाती है, किसी की किडनी खराब हो गई तो किसी ने अपना देकर जीवन-दान दिया, खून देकर रक्तदान किया। जिस रूप में दिया जाए, जब दान नि:स्वार्थ होगा तो अधिक मूल्यवान् होगा, पर स्वार्थ में भी किया जाए तो वह भी महत्त्व रखता है, उसमें भी पावनता होती है। बेटा-बेटी के लिए, माता-पिता के लिए, भाई-बहन के लिए या किसी सगे-संबंध ी के लिए किए जानेवाले कार्य में ममता होती है, परंतु नि:स्वार्थ-वश असहायों की सहायता में करुणा होती है ।

(1) जिससे कोई अपेक्षा नहीं, उस जरूरतमन्द की जरूरतें पूरी करना, (2) उपकार के बदले या वह भी समय पर काम आएगा, इसलिए लाचारी से किसी को कुछ देना तथा (3) बिना सोचे-विचारे, बिना सद्भाव के, तिरस्कार करते, दुत्कारते याचक के लिए क्या आवश्यक, क्या अनावश्यक है, इसपर ध्यान न देते हुए कुछ दे देना- ये तीनों तरह के दान क्रमश: सात्त्विक, राजस एवं तामस हैं। यह संदेश गीता का भी है और समाज भी समझता है। भूखे-प्यासे, देर रात आए किसी व्यक्ति को कोई हजार रुपए का नोट देकर कहे कि खाने की व्यवस्था नहीं है, लीजिए कुछ खा लीजिएगा, कैसा रहेगा। (शेष पृ. .....पर)

संस्कृत नाट्यकला और भास

डॉ. क्षमा कुमारी
एम. एम. (संस्कृत)
लब्ध स्वर्णपदक
पीएच. डी

संस्कृत के नाटककारों में भास का नाम अग्रगण्य है। वे न केवल प्राचीनतम हैं बल्कि मंचोपयोगी नाटकों के कारण चर्चित भी रहै हैं। उनके 13 नाटक उपलब्ध हैं। रामायण, महाभारत, उदयन-कथा एवं कल्पित कथा के आधार पर उनके नाटक अपने यथार्थ स्वरूप के कारण शायद अधिक चर्चित रहे। ईसा पूर्व 4थी शती में उन्होंने धन के अभाव, दरिद्रता, गुण्डागर्दी आदि यथार्थों पर चारुदत्तम् में जो कुछ लिखा वह 20वीं शती के प्रगतिशील लेखकों के लिए भी प्रेरक बना। चारुदत्तम् का खलनायक शकार कहता है- विपणिषु हतशेषाः रक्षिणः साक्षिणो मे यानी बाजार में जो पुलिस बल मेरे द्वारा मार दिये जाने से बच गये हैं वे ही मेरे अपराधों के साक्षी हैं। काव्य का यह यथार्थ रूप बाद में दुर्लभ है। ऐसे महाकवि भास की नाट्यकला पर यहाँ एक आलेख प्रस्तुत है, जो हमें भास की प्राचीन सम्प्रेषण कला का बखान करता है। सं.

अपनी मौलिकता और नाट्यकला कौशल के लिए विख्यात नाट्यकार भास ने यद्यपि नाट्यशास्त्र के प्रेणता भरतमुनि के नाट्य के नियमों का अक्षरशः पालन नहीं किया है, तथापि उन्होंने अपनी अद्वितीय कल्पना-शक्ति से अपने नाटकों को अपूर्व रोचक और सफल बनाने में अपनी अद्वितीय प्रतिभा दिखलाई है। उनकी नाट्यशैली की अनुपम विशेषता यह है कि वे कहीं-कहीं परोक्ष घटनाओं और अनुपस्थितं पात्रों को बिना रंगमंच पर उपस्थित किये ही पात्रों की उसमें रुचि उत्पन्न कर देते हैं। इनके रूपकों में विविधता तथा बहुमुखता विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। कुछ नाटक जैसे 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्' इत्यादि पूर्ण विकसित नाटक हैं वहीं 'मध्यमव्यायोग', 'दूतवाक्य', 'कर्णभार' और 'उरुभंग' इत्यादि एक अंक के रूपक होने के कारण एकांकी कहे जा सकते हैं। इनके नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता है- इनकी अभिनेयता। ये समग्र नाटक रंगमंच पर बड़ी खूबी के साथ दिखाये जा सकते हैं। इसका कारण है कि इनके नाटकों में न तो कहीं वर्णन की अधिकता है जो रूपक की अभिनेयता में विघ्न डालती है, और न कहीं कथावस्तु का अनावश्यक विस्तार है जो कार्यान्विति को रोकता है। कथानकों का चयन, भाषा का प्रवाह, संवादों की संक्षिप्तता तथा संयत पद्य प्रयोग दर्शकों के मानस पटल पर अपना स्वतंत्र प्रभाव डालते हैं।

रूपक के जो प्रसिद्ध गुण कथावस्तु, नायक और रस के रूप में माने गए हैं, इन तीनों की दृष्टि से भास के रूपक समर्थ हैं। नाटक की नीरस रूढ़ियाँ भास के नाटकों में नहीं मिलतीं जो अभिनय के प्रवाह में विघ्न उपस्थित करतीं हैं। नाट्य की मुख्य सफलता रसोद्भावन तथा परिस्थितियों की पहचान में निहित रहती है, जिन्हें प्रस्तुत करके नाट्यकार दर्शकों के हृदय को बाँधे रखता है। भास ने अपने रूपकों में वीर रस के स्थायीभाव उत्साह, शृंगार का भाव प्रेम, करुणा का भाव शोक, अद्भुत का स्थायी भाव विस्मय आदि को यथास्थान प्रस्तुत कर अपनी कलात्मक उदात्तता का परिचय देते हैं।

स्वप्नवासवदत्त का उदयन अपने प्रेमी रूप

को ही बहुधा प्रकट करके जब वत्सदेश के पुनः अधिग्रहण के लिए मगध राज्य की सन्नद्धता की बात सुनता है तो उत्साह से भरकर कहता है-

उपेत्य नागेन्द्र-तुरङ्ग-तीर्णो
तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम्।
विकीर्ण-बाणोग्र-तरङ्ग-भङ्गे
महार्णवाभे युधि नाशयामि॥

प्रेम और विरह की भावनाओं में जीते हुए उदयन में पहली बार भास ने युयुत्सा का आधान करके उसके चरित्र के धीरोदात्त पक्ष को प्रकट किया है, अन्यथा चारित्रिक गुणों के प्राबल्य से नायक धीरललित की श्रेणी से बाहर नहीं हो सकता था।

प्रकृति के वर्णन के क्रम में महाकवि तपोवन तथा प्रकृति की रमणीय अवस्था का चित्रण करते हुए कहते हैं-

विश्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशगतप्रत्यया वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः। भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनानि क्षेत्रवन्यो दिशो निःसंदिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः॥

अर्थात् तपोवन के कारण ही मृग निश्चिन्त भ्रमण कर रहे हैं। वृक्ष और पौधे फलों और फूलों से परिपूर्ण हैं। कपिला गायें भी अधिक संख्या में घूम रही हैं। समीपवर्ती स्थान में कहीं कृषि योग्य भूमि भी नहीं दीख रही है तथा यज्ञ का धुआँ भी विस्तृत हो रहा है, इसलिये यह स्थान निश्चित ही तपोवन है।

स्वप्नवासवदत्त के सन्दर्भ में भास ने कुछ ऐसी मौलिकता प्रदर्शित की है जो इसे 'दाहकोऽभून्न पावकः' के समुचित रूपक की अर्हता प्रदान करती है। इस नाटक में चार ऐसी उद्भावनायें गिनाई जा सकती हैं- प्रथम अङ्क में ब्रह्मचारी का प्रवेश, चतुर्थ अङ्क मे उदयन का धर्मसङ्कट, पंचम अङ्क में स्वप्नदृश्य और षष्ठाङ्क में अद्भुत रस का सन्निवेश।

इस नाटक का प्रथम अङ्क राजगृह के निकट का तपोवन दृश्य उपस्थित करता है, जहाँ परिव्राजकवेषधारी यौगन्धरायण वासवदत्ता को अवन्तिका का रूप देकर राजकुमारी पद्मावती के पास न्यास (धरोहर) के रूप में रखता है। संन्यासी किसे न्यास के रूप में रख रहा है- इससे सहज जिज्ञासा उत्पन्न होती है। इसका शमन करने के लिये ब्रह्मचारी के रूप में एक पात्र का सन्निवेश किया गया है, जो लावाणक ग्राम की बातें अनावृत्त करता है। वहाँ वासवदत्ता और यौगन्धरायण जल गये हैं, यह वृत्तान्त फैला है। प्रेक्षक समझ जाता है कि वे दोनों तो प्रस्तुत दृश्य में वर्तमान है; रूप बदलकर आये हैं; अवश्य ही कोई योजना या षड्यन्त्र की चाल है। इस प्रकार ब्रह्मचारी के आगमन से प्रेक्षक को कथानक की पृष्ठभूमि का अनुमान हो जाता है, ऐसा नहीं होने पर आधुनिक नाटकों के समान नेपथ्य से कथावस्तु की घोषणा करनी पड़ती।

ब्रह्मचारी के निवेश से वासवदत्ता और यौगन्धरायण को यह पता चल जाता है कि योजना शत-प्रतिशत सफल है, सर्वत्र दोनों के जल जाने की बात प्रचारित है। दोनों को यह आश्वासन भी प्राप्त होता है कि उदयन की स्थिति ठीक है तथा उसका उपचार मन्त्री रुमण्वान् कर रहा है। वासवदत्ता को यह अतिरिक्त आश्वासन मिलता है कि उसका प्रेमी उसके लिये विह्वल है, उसे भूला नहीं है। ब्रह्मचारी एक प्रकार से उसकी प्रशंसा करता है-

धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्त्ता
भर्तृस्नेहात्सा हि दग्धात्यदग्धा।

वासवदत्ता के प्रति उदयन का यह स्नेह तथा उसके पुनर्विवाह की कल्पना से राजपुत्री पद्मावती के हृदय में प्रेम के अङ्कुर फूटते हैं। वह मन-ही-मन उदयन को चाहने लगती है तथा आगे चलकर उसकी यह मनोकामना पूरी होती है।

चतुर्थ अङ्क में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होती है कि प्रमदवन में उदयन एक शिलातल पर विदूषक के साथ बैठा है; पास ही लता गुल्म में वासवदत्ता और पद्मावती (उदयन की पत्नियाँ) बैठी हुई है। विदूषक उदयन से हठपूर्वक पूछता है कि दोनों में प्रियतरा कौन है? उदयन इसका उत्तर टालने का प्रयास करता है परन्तु विदूषक के हठ के आगे उसे

झुकना पड़ता है। उधर दोनों स्त्रियाँ कान छानकर बैठी हैं कि क्या उत्तर मिलता है? लेखक जानता है कि किसी एक को श्रेष्ठतरा बताने का परिणाम क्या होगा? यदि पद्मावती की तारीफ करेगा तो वासवदत्ता का दिल टूट जायेगा और यदि वासवदत्ता को श्रेष्ठतरा बतायेगा तो पद्मावती शीघ्र ही झाड़ी से प्रकट हो जाएगी। नवीन नायिका सपत्नी को कभी अपने से श्रेष्ठ नहीं सुनना चाहेगी। इस समस्या का समाधान भास मनोविज्ञान का सहारा लेकर करते हैं-

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूप-शील-माधुर्यैः।
वासवदत्ता बद्धा न तु तावन्मे मनो हरति॥

यहाँ पहले नवीन नायिका पद्मावती को प्रसन्न करने की कोशिश की जाती है कि उसमें रूप है, शील है, माधुर्य है, वह बहुत ही अच्छी लगती है। इतना सुनकर ही पद्मावती अपने आप में खो जायेगी। वासवदत्ता के विषय में उदयन क्या कहेगा? इसे सुनने में उसकी रुचि नहीं रहेगी। किन्तु तपस्विनी वासवदत्ता तो इसे सुनने के लिए व्यग्र ही रहेगी। उसका नाम बाद में ही लिया गया तो क्या हुआ? थोड़ी तपस्या और सही। किन्तु कहा गया- वासवदत्ता में आबद्ध मेरे मन को यह पद्मावती नहीं खींच पाती। बस, उसे सबकुछ मिल गया।

पंचम अङ्क के स्वप्नदृश्य में उदयन स्वप्न में बोल रहा है और वासवदत्ता उसका समुचित उत्तर देती है। जब वासवदत्ता पलंग से उदयन के लटकते हाथों को ऊपर रखने का प्रयास करती है तो उदयन को वासवदत्ता के स्पर्श की अनुभूति होती है। स्वप्नवासवदत्ता में स्वप्न में उदयन को जब वासवदत्ता के जीवित होने की बात की प्रतीकात्मक सूचना मिलती है तब पुनः स्थूल धरातल पर नायक-नायिका के मिलन की आवश्कयता नहीं रह जाती। तथापि भास ने समस्त विच्छिन्न घटनाओं तथा पात्रों को सङ्कलित करके प्रस्तुत किया है। निर्वहण सन्धि में अद्भूत रस का निवेश चमत्कारी होता हे- इसे भास ने सिद्ध किया है। वासवदत्ता के स्वर्गवासी होने की सूचना मिलने पर कंचुकी राजा को इस प्रकार सान्नवना देता है-

कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले
रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ते।
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां
काले काले छिद्यते दह्यते च॥

अर्थात् अकस्मात् मृत्यु के आ जाने पर कौन किसकी रक्षा कर सकता है? रस्सी के टूट जाने पर कौन घड़े को धारण कर सकता है? मनुष्य वृक्षों के समान ही हो जाते हैं। भास का सान्त्वना देने का यह तरीका निश्चय ही निराला है। इसी नाट्यकला के सम्बन्ध में राजशेखर ने कहा था कि-

स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्नपावकः॥

इस प्रकार, नाट्यकार भास संस्कृत साहित्य के प्रथम उपलब्ध नाटककार हैं जिन्होंने अपनी प्रतिभा का बड़ा ही सुन्दर दिग्दर्शन कराया है। संस्कृत नाट्य साहित्य के आध नाटककार होने के बावजूद इन्होंने नाटक के तीनों आवश्यक तत्व वस्तु, नेता और रस का यथास्थान यथासमय सुन्दर निरूपण किया है। तभी तो, कालिदास जैसे महाकवि भी भास का नाम आदरपूर्वक कविकुलगुरु सन्दर्भ सूची-

संस्कृत साहित्य का इतिहास- आचार्य बलदेव उपाध्याय
संस्कृत साहित्य की रूपरेखा- पाण्डेय तथा व्यास
संस्कृत नाटककार-कान्ति किशोर भरतिया
संस्कृत साहित्य का इतिहास- डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'

❑

विष्णुपद मन्दिर का दर्शन और पूर्वजों का भाव-तर्पण

डा. एस. एन. पी. सिन्हा

संयोगवश मुझे परम पुनीत मोक्ष नगरी एवं प्रसिद्ध विष्णुपद मन्दिर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यों तो कई बार वहाँ गया था, परन्तु इस बार का जाना कुछ विशेष रहा और अनुभूतियाँ भी विशेष रहीं। तुलसीदास ने कहा भी है: *कार्य पुण्य बिनु मिलहिं न संता।* इस संयोग को पुण्यपुंज ही कहेंगे।

पुण्य नगरी गया में शिक्षा पर विशेषज्ञों का सेमिनार हो रहा था, उसी में मैं भाग लेने गया था। वहाँ सरकारी विश्राम-गृह में ठहरा था। दो लड़के भी मेरी सेवा में लगे थे। मैं विशेष उत्साहित था क्यों कि चैती नवरात्र का षष्ठी का दिन था और वहाँ माँ मंगला गैरी का प्रसिद्ध मंदिर भी था। नवरात्र के अवसर पर माँ का दर्शन करना है, ऐसा सोचकर मैं विशेष आनंदित हो रहा था। सेमिनार में दिन में भाग लिया, वहाँ मैं वक्ता था।

रात में मंगला गौरी के दर्शन के लिए उन दोनों लड़कों के साथ चला। ज्यों ही गाड़ी बढ़ी, लड़के जिद करने लगे- "अंकल, विष्णु मन्दिर के पा से जा रहे हैं, दर्शन कर लीजिए।" मैंने भी जिद ठान ली- "वहाँ कई बार दर्शन कर चुका हूँ, जाना है तो सिर्फ सिद्धपीठ मंगलागौरी मन्दिर।" लड़के ने कहा- "अंकल, दो मिनट का समय नहीं दे सकते क्या।"

मैं भी मान गया, मन्दिर गया रात के आठ बजे। दर्जनों पंडित वहाँ विष्णु सहस्रनाम का सस्वर पाठ कर रहे थे। वे, स्तोत्र याद रहने के कारण, अपनी स्मरण शक्ति का उपयोग कर रहे थे। मुझे विशेष अनुभूति हुई- शरीर मस्तिष्क में कम्पन-सा महसूस हुआ। लगा, साक्षात् विष्णु चरण-दर्शन दे रहे हैं। मैंने कहा- प्रभो, लोग आपके दरबार में अपने पूर्वजों के श्राद्ध-तर्पण के लिए आते हैं, और कर्मकाण्ड की लम्बी प्रक्रिया करते हैं। यहाँ पंडा लोग कभी-कभी उन्हें सही मार्ग-दर्शन नहीं दे पाते, अत: मैं अपने पूर्वजों का भाव-तर्पण करता हूँ। स्वीकार कीजिए प्रभो। मुझे लगा, मेरी प्रार्थना स्वीकार हो गयी। पर मन में आशंका बनी रही- क्या भगवान् विष्णु के दरबार में इस तरह भाव-तर्पण करना शास्त्र-सम्मत है? शास्त्रों में हमने जानकारी लेनी शुरू की। मैं जटिल कर्मकाण्ड की प्रक्रिया में नहीं जा सकता। शास्त्रों से जानकारी हासिल हुई। भाव-शास्त्रों से जानकारी हासिल हुई। भाव-श्रद्धा तर्पण सही है, जिससे हमें तुष्टि मिली।

गीता प्रेस गोरखपुर के प्रकाशित 'कल्याण' का अंक (वर्ष-12, संख्या-8) हमारे पास था। उसमें पण्डित लाल बिहारीजी मिश्रा का लेख- 'श्राद्ध-समीक्षा' पढ़ा। तुष्टि हुई। भाव-तर्पण के लिए श्राद्धकर्ता दोनों भुजाओं को उठाकर प्रार्थना करे- "मेरे पास आप के लिए श्रद्धा और भक्ति है, मैं उन्हीं के द्वारा अपने पूर्वजों को तृप्त करना चाहता हूँ, आप तृप्त हो जाँये।"

मुझे तो लगा, मेरा भाव-तर्पण विष्णु दरबार में स्वीकृत हो गया। प्रतिदिन प्रात: भाव-तर्पण (स्मरण) करता हूँ, मुझे तृप्ति होती है। जो कर्मकाण्ड की लम्बी जटिल प्रक्रिया से बचना चाहते हैं या जिन्हें धन का अभाव है, उन्हें भाव-तर्पण करना चाहिए।

नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ओम् शान्ति:।

हे अनंत दया के सागर करुणाकर भगवान।
हे नारायण चरण कमल की भक्ति दीजो दान।।

(मीराबाई)

ऋग्वेद में सविता का स्वरूप

डॉ. किरण कुमारी शर्मा,
व्याख्याता, मगही विभाग, बोधगया

पिछले अंक में हमने सूर्य से सम्बन्धित आलेख देखा। ऋग्वेद में सूर्य एवं सविता के सम्बन्ध में सायणाचार्य कहते हैं कि दोनों में किसी प्रकार का भेद नहीं है केवल स्वरूप में अन्तर है, फलतः एक ही सूक्त में सूर्य एवं सविता दोनों का पर्याय के रूप में उल्लेख हुआ है। 'सूञ् प्राणिप्रसवे' धातु से निष्पन्न 'सविता' शब्द से प्राणियों को उत्पन्न करनेवाले देव 'सवितृ' का बोध होता हैं। इन्हीं का मन्त्र गायत्री के नाम से आजतक सबसे अधिक जपा गया है। इसी मन्त्र की दीक्षा उपनयन-संस्कार है, जो षोडश संस्कारों में अन्यतम है। ऋग्वेद में इस सविता के स्वरूप पर यहाँ शोध आलेख प्रस्तुत है।

प्राग्वैदिक ऋषियों में 'सविता' को सूर्य से पृथक् देवता माना गया है। इनके अनुसार सविता, सूर्य को प्रेरित करते हैं।[1] सायणाचार्य यहाँ सविता और सूर्य को एकदेव भाव में पाते हैं; तभी तो, सविता सूर्य के समक्ष मनुष्यों को निष्पाप घोषित करते हैं।[2] ये सूर्य किरणों के साथ सम्मिलित होते हैं।[3] यत्र-तत्र इन दोनों नामों, 'सविता और सूर्य' का साथ-साथ वर्णन भी मिलता है।[4] सूर्य रश्मि सविता पूर्व दिषा में 'अजस्र ज्योति' को उदित करते हैं।[5] अतः स्पष्ट होता है कि सौर देवता सविता ऋग्वेद में सूर्य के समान ही महत्त्वपूर्ण हैं।

ब्राह्मणों में सविता को पुरुष, मन तथा प्राण से समीकृत किया गया है; जिसका आधार ऋग्वेद में स्थापित उसकी महत्ता ही है। सविता का स्थिति काल सूर्य से थोड़ा भिन्न है। सविता सामान्य रूप से दिन और रात, दोनों के प्रेरक देवता हैं। वे दिन और रात्रि के सन्धिकाल में निरलस होकर जाते हैं।[7] तथापि उन्हें उषा के बाद (सूर्य से पूर्व) दीप्त होनेवाला कहा गया है।[8] यास्क ने इन्हें उदय से पूर्व सूर्य का वाचक कहा है। सविता के समय में द्युलोक अन्धकार रहित और प्रकाशित होता है। किन्तु, पृथ्वी पर अन्धकार होता है। कृकवाकु मुर्गा इसी समय बोलता है। उषा आगमन के बाद और सूर्य-उदय के पूर्व इसकी स्थिति होती है।[9] सायणाचार्य ने उदय से पूर्व सूर्य को 'सविता' कहा है तथा उदय से अस्त तक 'सूर्य' कहा हैं।[10] इसकी पुष्टि सविता द्वारा सूर्य के द्युलोक में आने के वर्णन से होती है।[11] सविता उदयगामी सूर्य की भाँति ही अस्तगामी सूर्य का भी प्रतीक है। अन्यत्र, इसकी स्तुति अस्तगामी सूर्य के रूप में की गई है।[12] ये मनुष्यों

---

1. ऋग्वेद 1/35/9
2. ऋग्वेद 1/123/3
3. ऋग्वेद 5/139/1
4. ऋग्वेद 10/181/3
5. ऋग्वेद 10/139/1
6. श.ब्रा.– 6/3/13, 15
7. ऋग्वेद 5/82/8
8. ऋग्वेद 5/81/2
9. नि.– 12/12/2,3
10. ऋ.सा.सा.–5/81/4
11. ऋग्वेद 10/39/1
12. ऋग्वेद 2/38

को सोने हेतु प्रेरित भी करते हैं।[13] सविता कर्म के बाद रात्रि आती है। रात्रि के समय सविता ऊपर बैठते हैं।[14] रात में सविता और सूर्य कहाँ रहते, यह कोई नहीं जानता है।[15] सविता के अधिकांश मन्त्रों में इसका संबंध प्रातःकालीन तथा सायंकालीन यज्ञों से है।[16]

सविता के पास दो शुभ्र अश्व हैं जबकि सूर्य के पास सात हरित अश्व है। सविता यज्ञ में यजमान द्वारा प्राप्तव्य पद पाते हैं।[17] जहाँ 'सविता' के व्रतों की कामना की बात है,[18] वहाँ सायण ने 'सोमयागादि रूपकर्मों का अभिप्राय किया है। सविता अकेले ही सभी यज्ञों को पूरा करते हैं।[19] ये यज्ञ-यागादि में आवहनीय और वन्दनीय भी हैं।[20] इन्हें अनुष्ठानों के पालक अर्थ में 'सत्पति' कहा गया है।[21] देवी अदिति, सम्राट् वरुण, अर्यमन् और मित्र देव सविता की स्तुति करते हैं।[22] सविता देव सब प्रकार से प्रशंसित और नमस्य हैं।[23]

सविता अपनी महिमा से पार्थिव लोकों को नापते हैं।[24] उनकी स्तुति बहुत महान् है।[25] उनकी महिमा स्तुतियोग्य है।[26] धृतव्रत 'सविता की महिमा ही है कि वे महान् जगत् के राजा हैं।[27] गायत्री मन्त्र ब्रह्मचारियों के उपदेश योग्य प्रथम वेदमन्त्र है जो प्रातःकालीन हिन्दू-प्रार्थनाओं में विशिष्ट स्थान रखता है। यह पवित्रतम ऋचा है, जो सविता देवता के प्रति कही गई है।[28] सविता सर्वप्रेरक देव हैं। वे यजमानों को गृह से युक्त निवास प्रेरित करते हैं।[29] ये देवताओं को अमृतत्व और मनुष्यों को पुत्र-पौत्रादि प्रदान करते हैं। वे जल और वायु को प्रवाहित होने के लिए प्रेरित करते हैं।[30] वे दुःस्वप्न और दुरित को दूर कर कल्याण को पास लाते हैं।[31] ये सभी कर्मों के ज्ञाता है तथा अकेले ही सब यज्ञों को पूरा करते हैं।[32] यही कारण है कि दूसरे सभी यजनीय देव सविता के बाद उत्पन्न हुए हैं।[33] सविता से अनेक बार अन्न-धन प्रेरित करने को कहा गया है।[34] हम सविता से प्रेरित अन्न का ही भक्षण करते हैं।[35] प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र में वे कर्म या धर्म से सम्बद्ध बुद्धि को प्रेरित करने हेतु प्रार्थित हैं।[36] धियो योनः प्रचोदयात्।

सूर्य का 'सर्वप्रेरक' रूप ही सविता है। इसे अनेक बार प्रेरक और प्रसविता कहा गया है।[37] ये अपनी भुजाओं को उठाकर हमें विधि कर्मों के लिए प्रेरित करते हैं।[38] पृथुपाणि सविता जगत् के सुख के लिए ऊपर बाहुओं को प्रेरित करते हैं।[39] सविता की हिरण्यमय बाहुएँ (कर) सूर्य की

13. ऋग्वेद 14/53/61
14. ऋग्वेद 2/38/3
15. ऋग्वेद 6/71/4
16. ऋग्वेद 1/35/7
17. ऋग्वेद 1/22/5
18. ऋग्वेद 1/22/6
19. ऋग्वेद 5/81/1
20. ऋग्वेद 1/35/3, 8, 10
21. ऋग्वेद 5/82/7
22. ऋग्वेद 7/38/64
23. ऋग्वेद 7/38/3
24. ऋग्वेद 15/81/3
25. ऋग्वेद 5/81/1
26. ऋग्वेद 7/45/2
27. ऋग्वेद 5/43/4
28. ऋग्वेद 3/62/10
29. ऋग्वेद 4/54/5
30. ऋग्वेद 4/51/2
31. ऋग्वेद 15/282/4,5
32. ऋग्वेद 5/81/1
33. ऋग्वेद 5/81/1
34. ऋग्वेद 1/24/3,5
35. कौ0ब्रा0 12/8
36. ऋग्वेद 3/62/10
37. कौशितकी ब्राह्मण 6/14
38. ऋग्वेद 4/53/3
39. ऋग्वेद 6/71/1

स्वर्णिम किरणें हैं। सविता लोक को उद्‌बुद्ध करने हेतु प्रतिदिन उदित होते हैं।[40] ये सभी को प्रेरित करते हैं।[41] ये सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले तथा प्रकर्षरूप से कर्मो के अनुज्ञाता हैं।[42] इनके व्रत का उल्लंघन इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा और रुद्र आदि कोई नहीं करते।[43] पशु-पक्षी भी सविता के विभाजन का आदर करते हैं।[44] एक ऋचा में इन्हें समस्त प्रसव का शासक और स्वामी कहा गया है।[45] सविता समस्त विश्व के द्विपदों और चतुष्पदों के विश्राम में और व्यवसाय में कारण है।[46]

ऋग्वेद के सविता रक्षक और पालक भी हैं। सर्वविधरक्षा हेतु उनका आवाहन और अनुरोध भी किया गया है।[47] सर्वदा सुरक्षा करनेवाले अर्थ में ही सविता को 'सदावन' सम्बोधित किया गया है।[48] वे 'स्वस्ति' द्वारा रक्षण और पालन के लिए सदा प्रार्थनीय है।[49] सूर्य के समान सविता भी अन्धकार निवारक तेज द्वारा आकाश को व्याप्त करते और रोगों को दूर भगाते हैं।[50] वे राक्षसों और यातना देने वालों को दूर करते हैं।[51] वे पापियों के शासन से मुक्त करानेवाले हैं।[52] वे हमें समस्त पापों से रोकते और उपासकों को अपराधरहित करते हैं।[53] सविता और सूर्य के समान गुणों के कारण ही कुछ मन्त्रों में इन दोनों नामों का प्रयोग एक ही देवता के लिए किया गया है।[54]

सविता देवता प्रकाश, वर्षा और रसों को उत्पन्न करने के कारण ही 'सविता' कहलाते हैं।55 वे जल से पूर्ण अपनी भुजाओं को ऊपर उठाते हैं।[56] जिस स्थान पर रहकर मेघ पृथ्वी को आर्द्र करते हैं उस स्थान को सविता कहते हैं।[57] प्रातःकाल जल से उदित होने के कारण 'अपांनपात्' भी है।[58] ये ऋतुओं के निर्माता हैं।[59] सभी ऋतुओं में सुखकर हों एसी प्रार्थना उनसे की जाती है।[60] ये उपासकों के इष्ट प्रदाता हैं। द्विपद और चतुष्पद के लिए कल्याणकारी हैं।[61] ऐश्वर्यवान् सविता देव दानशील को रत्न प्रदान करते हैं।[62] इनसे सर्वविध सुख और मंगल प्राप्त होता है।[63] धन प्राप्ति हेतु वे इन्द्र सम बैठते हैं।[64] ये ही 'पुरुवसुः' और 'वसुपतिः' हैं [65] इसी कारण इनसे उत्तम धन की कामना की जाती है।[66] सविता 'सुरत्नः' है और हमारे हितहेतु बहुशः धन धारण करते हैं।[67] इसी कारण से उपासक जन सविता के प्रिय हो जाना चाहते हैं।[68] इनके

---

40. ऋग्वेद 2/38/1
41. ऋग्वेद 5/82/9
42. ऋग्वेद 5/82/7
43. ऋग्वेद 2/38/9
44. ऋग्वेद 2/38/7
45. ऋग्वेद 5/81/5
46. ऋग्वेद 6/71/2
47. ऋग्वेद 1/35/3
48. ऋग्वेद 1/24/3
49. ऋग्वेद 7/45/4
50. ऋग्वेद 1/35/9
51. ऋग्वेद 1/35/10
52. ऋग्वेद 1/35/3
53. ऋग्वेद 4/54/3
54. ऋग्वेद 4/14/2; 7/63/3; 1/35/1–11
55. ऋग्वेद 1/35/2
56. ऋग्वेद 6/71/1
57. ऋग्वेद 10/149/1
58. ऋग्वेद 1/22/6
59. ऋग्वेद 2/38/4
60. ऋग्वेद 1/53/7
61. ऋग्वेद 5/81/2
62. ऋग्वेद 5/82/3
63. ऋग्वेद 5/83/3
64. ऋग्वेद 10/139/3
65. ऋग्वेद 7/38/1
66. ऋग्वेद 6/71/6
67. ऋग्वेद 7/45/1
68. ऋग्वेद 2/38/10

असाधारण यशस्वी और प्रिय स्वराज्य को कोई नष्ट नहीं कर सकता।[69] इसी सविता के भद्र, सौभग, शर्म, सुम्न, रत्न, स्वस्ति, द्रविण, वार्य, छर्दिस्, भोजन और श्रेष्ठ, वाम, वयः, वसु और मर्तभोजन, सुवित्, शम् और काम्य, राघस् इत्यादि नामों से सभी सुख, मंगल की कामना की जाती है।

जगत् को प्रकाशित करने के कारण सविता लोकों को व्याप्त करनेवाले या धारण कर्त्ता भी हैं।[70] ये सविता तीन अन्तरिक्षों, तीन लोगों, तीन रोचमान स्थानों, तीन दिवलोकों और तीन पृथ्वी लोकों को सर्वतः व्याप्त किये हुए हैं।[71] अन्धकार निवारक यही देवता आकाश को सभी तरफ से व्याप्त करते हैं।[72] ये पृथ्वी को सुस्थिर करते हैं और आकाश को दृढ़ रूप प्रदान करते हैं।[73] यही विश्व भुवन के धारक भी हैं।[74] इन्हें द्युलोक का धारणकर्त्ता भी माना जाता है।[75] इन्हीं से पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यावापृथ्वी विस्तीर्ण हुई हैं।[76] लोक जीवन का अस्तित्व कहीं यदि अवलम्बित है तो वह सूर्य-प्रकाश ही है। इस सूर्य प्रकाश का स्रोत सूर्य देवता और सूर्यवत् सविता ही हैं।

सविता देव उदीयमान और गमनशील रूपों में सब पापों को रोकने के लिए दूर देश से आते हैं।[77] ये द्यावापृथ्वी के बीच संचार करते हैं।[78] वे तीनों प्रकाशमान लोकों में जाते हैं।[79] सायण के अनुसार 'सूर्योदय की पूर्व अवस्था का नाम सविता है तथा उदय के बाद अस्त तक की अवस्था का नाम सूर्य है। अन्य देवता इसी सविता के मार्ग का अनुसरण करते हैं।[80] सविता का मार्ग धूलरहित, पूर्वसिद्ध और अन्तरिक्ष में स्थित है।[81] उनका उदय प्रार्थनीय है।[82] सविता देव अपनी सुनहरी किरणों को ऊपर करके उदित होते हैं, अन्धकार को दूर करते हैं और सबको आनन्दित करते हैं।[83]

सविता सौर देवता रूप में हिरण्यपाणिः तथा अयोहनुः (लोहे जैसी हनुवाले) है।[84] उन्हें मन्त्रों में सुपाणिः, मन्द्रजिह्वः, सुजिह्व, और स्वंगुरिः कहा गया है।[85] ये युवा हैं।[86] इनके बाल हरिकेशः। हरितवर्ण के केश-रूपी रश्मियाँ हैं।[87] ये हिरण्यमयी प्रभा या रूप का आश्रय लेते हैं।[88] इनका रथ और उसकी फड़े तक स्वर्णिम हैं।[89] ये विश्वरूप है।[90] दो श्वेत अश्व इनके रथ में जुते हैं।[91] इनके नाम श्यावाः है।[92] उनका कवच सुनहरा है।[93] द्रष्टा रूप में इन्हें 'नृचक्षाः' कहा गया है।[94] इसी अर्थ

---

69. ऋग्वेद 5/82/2 70. ऋग्वेद 4/53/5
71. ऋग्वेद 1/35/9 72. ऋग्वेद 10/149/1 73. ऋग्वेद 4/54/4
74. ऋग्वेद 10/149/4 75. ऋग्वेद 10/149/2 76. ऋग्वेद 1/135/3
77. ऋग्वेद 1/35/9 78. ऋग्वेद 5/81/4 79. ऋग्वेद 5/81/3
80. ऋग्वेद 1/35/11 81. ऋग्वेद 7/38/2 82. ऋग्वेद 6/71/5
83. ऋग्वेद 1/22/5 84. ऋग्वेद 3/33/6 85. ऋग्वेद 6/71/1
86. ऋग्वेद 10/139/1 87. निघण्टु 3/7 88. ऋग्वेद 7/38/1
89. ऋग्वेद 1/35/2 90. ऋग्वेद 1/135/4 91. ऋग्वेद 1/35/3
92. ऋग्वेद 1/35/5 93. ऋग्वेद 1/15/8 94. ऋग्वेद 4/53/2

में वे विचक्षणः और विचर्षणिः भी है।[95] ये आठों दिशाओं, तीन लोकों, सातों नदियों या समुद्रों को प्रकाशित करते हैं।[96] ये हमें प्रकाशित करते हैं।[97] ये तीनों लोको के प्रकाशक हैं।[98] ये सम्पूर्ण विश्व की रक्षा करते तथा उसका आधार भी हैं।[99] जगत् नियमों के रक्षक भी सविता ही हैं।[100] ये वरुण की तरह हैं।[101] स्वामी दयानन्द ने कर्मों को दृष्टि में रखकर सविता पद का अर्थ विविध रूपों में किया है यथा उत्पत्तिकर्त्ता, ऐश्वर्यप्रदाता, सत्कर्म-प्रेरक परमात्मा आदि। कई बार इसका अर्थ सूर्य, सूर्यमण्डल या सूर्यलोक भी किया गया है।[102] मैकडॉनल के अनुसार 'सविता' प्रेरक हैं और सूर्य की उत्तेजक क्रियाशीलता का प्रतिनिधित्व करते हैं।[103] जॉन डायसन सविता को सूर्य का एक नाम मानते हैं।[104]

'सविता' शब्द की व्युत्पत्ति सू॰ धातु में तृच् प्रत्यय लगने से हुई है। सूर्य के तीन अर्थ हैं- प्रेरित करना, उत्पन्न करना और अभिषवण करना। इसका अर्थ है प्रेरित करना, या प्रचोदित करना है, यथा-

"सविता देवता ने प्रत्येक चर वस्तुओं को उद्बुद्ध किया।[105] उद्बोधन के स्वामी एकमात्र तुम्हीं हो।[106] सविता ने वह अमरत्व तुम्हारे लिए आविर्भूत किया है।[107] सविता हमें उद्बुद्ध करने के लिए उदित हुए हैं।[108] हे सवितः। हमें निष्पाप बनाओ[108] सविता दुरितों को दूरकरें (परासुव) और भद्र को ला दें (आसुव)।"[109]

अन्ततः कह सकते हैं कि प्रारम्भ में सविता विश्व में जीवन और गति के महान् प्रेरक सूर्य का एक विशेषण मात्र था, किन्तु सूर्य से पृथक् पड़कर यह उनकी अपेक्षा कहीं अधिक सूक्ष्म देवता का वाचक बन गया है। यह सूर्य अदृश्य होने पर सविता और उपासकों द्वारा दृश्य होने पर सूर्य कहलाते हैं। लुई रेनो इन्हें प्रातःकालीन सूर्य का एक रूप और अस्ताचल गामी सूर्य का प्रतिनिधि मानते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि सविता सूर्य का विशेष रूप है।

---

95. ऋग्वेद 1/12/7 96. ऋग्वेद 4/53/2 97. ऋग्वेद 1/35/8
98. ऋग्वेद 1/35/5 99. ऋग्वेद 4/45/4 100. ऋग्वेद 10/149/2
101. ऋग्वेद 7/86/1 102. भगवद्दत्त, सबिता देवता, पृ. 99–100
103. मैकडॉनल, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 78
104. डॉयसन, सी.डी.एच.एम., पृ. 251
105. ऋग्वेद 1/157/1 106. ऋग्वेद 5/81/5 107. ऋग्वेद 1/110/3
108. ऋग्वेद 2/38/1 109. ऋग्वेद 4/54/3

अतिथि संपादक की लेखनी से

इंसान की नि:स्वार्थ सेवा ही सच्चा धर्म

मगन देव नारायण सिंह

धर्म के दो स्तर हैं, आचार एवं उपासना। आचार के स्तर पर सभी धर्म में समान विचार हैं। उनमें से परोपकार अन्यतम है। आचार ऐसा धर्म-स्तर है, जिसे निभाना हमारा नित्य कर्म है अर्थात् उसके विना हम उपासना के अधिकार को ही खो देते हैं। वह अनिवार्य है इसलिए बड़ा है और सभी धर्मों में एक-सा ही है। वह सच्चा धर्म है। -सं.

सभी इंसान एक ही ईश्वर की सन्तान हैं। विभिन्न जाति-धर्म के लोगों में भेद करना और उन्हें उच्च या निम्न समझना; अपने को धर्मी और दूसरे को विधर्मी मानना; यह सब अज्ञानीजनों की करतूत है। जो गीता में है वही कुरान में है। जो वेदों में है वही हदीस में है। जो सच्चे संत हैं; जो सच्चे ईश्वर से लव लगानेवाले हैं वे इस बात की महत्ता को बखूबी समझते हैं। वे छूत-अछूत में भेद नहीं करते हैं। जो करते हैं, वे न गीता के मर्म को जानते हैं और न कुरान के उपदेशों को आत्मसात् कर पाते हैं। वे इंसान-इंसान में भेद करके ही अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करते हैं।

गीता में **भगवान श्रीकृष्ण** ने जो उपदेश दिये हैं उसका मर्म है कि कर्म ही प्रधान है। कर्म के आधार पर ही **भगवान श्रीकृष्ण** ने जाति का निर्धारण किया न कि जन्म के आधार पर।

गीता के चतुर्थ अध्याय में **भगवान श्रीकृष्ण** कहते हैं कि:-

चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।।

(अध्याय - 4/श्लोक -13)

अर्थात्, चार वर्णो की रचना उन्होंने उनके गुण-कर्म और उनके विभाग के आधार पर की है।

दुनियाँ की पैदाइश के बारे में **गीता** में कहा गया है -

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनानयेन तत्र का परिदेवमां।

(अध्याय -2/श्लोक -28)

अर्थात्, जितने भी प्राणी हैं वे आरम्भ में अव्यक्त अवस्था में थे। यानी उनमें से किसी का पृथ्वी पर कोई अस्तित्व नहीं था। उनका कोई रूप, रंग, आकार नहीं था। फिर, जब वह पैदा हुआ तो उसका रूप, रंग और आकार बना तो वह व्यक्त हुआ। फिर वे सब नष्ट हो जायगें अर्थात् अव्यक्त हो जायगें। पुनः वे जहाँ से आये थे वहीं समा जायेंगे।

कुरान की मशहूर आयत है कि हम सब अल्लाह ही के हैं और फिर उसी अल्लाह की तरफ लौटने वाले हैं। (बाक़रह -156)

सूफियों ने इसे और स्पष्ट किया है। इस्लाम की भाषा में अव्यक्त को **बेनिशान** या **अदम** कहते हैं। एक सूफ़ी कहते हैं -

दर अदम बूदेमो आख़िर दर अदम ख़ाहेम रफ़त,
ई तमाशाए जहां रा मुफ़त मी बीनेम मा।

अर्थात्, हम अदम (अव्यक्त) की हालत में थे और आख़िर में फिर उसी हालत में होंगे। यह बीच का तमाशा हम मुफ़्त में देख रहे हैं।

मौलाना रूम ने कुरान की उपर वाली आयत के हवाले से लिखा है -

सूरत अज़ बे सूरती आमद बिरूँ;
बाज़ शुद इन्ना इलै हे राजेऊन।

अर्थात्, सब सूरतें बेसूरती (निराकार या अव्यक्त) से निकली हैं और फिर उसी अल्लाह (निराकार) में जाकर मिल जाती है।

मौलाना रूम ने अपनी मसनवी में कहा है -

क़ाबिले तग़ईर औसाफ़े तन अस्त,
रूह बाकी आफ़तावे रोशन अस्त।।

X X X

अज़ मर्ग चे अन्देशी चूँ जाने वक़ा दारी।

अर्थात्, जिस्म की हालतों में अदल-बदल होता रहता है, किन्तु रूह एक-सी कायम रहती है जब रूह हमेशा-हमेशा कायम रहनेवाली है तो फिर, आदमी को मौत से डरना क्या?

गीता के चतुर्थ अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं -

बहूनि मे व्यतीतमानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप।।

(अध्याय, 4/श्लोक - 5)

अर्थात् हे! परंतप अर्जुन, मेरे और तेरे भी अनेक जन्म हो चुके हैं। मैं उन सब जन्मों को जानता हूँ। परन्तु, तुम नहीं जानते हों।

जहाँतक अवतारों अथवा रसूलों का सवाल है- सब मुल्कों में, सब जवानों और सब जमानों में लोगों का धर्म का रास्ता बतानेवाले पैदा होते रहे हैं।

गीता में **भगवान् श्रीकृष्ण** ने कहा है -

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

(अध्याय - 4/श्लोक -7)

अर्थात् जब-जब धर्म गिरने लगता है और अधर्म बढ़ने लगता है; तब-तब मैं बराबर भले लोगों की हिफ़ाजत करने, बुरे लोगों को मिटाने और धर्म को पुन:स्थापित करने के लिये पृथ्वी पर अवतार लेता हूँ।

अलग-अलग धर्म या मजहब के बारे में स्थिति स्पष्ट करते हुए गीता में कहा गया है कि-

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्या: पार्थ सर्वश:।।

(अध्याय - 4/श्लोक - 11)

अर्थात्, मुझे जो जिस भाँति भजता है; ढूँढ़ता है, मैं उसी अनुरूप उन्हें मिलता हूँ। हे पार्थ! मनुष्य जिस मार्ग से चलकर मुझतक पहुँचता है मैं उसी मार्ग से उसे मिलता हूँ।

कुरान में भी कहा गया है कि अल्लाह ने सभी प्राणियों के लिये अलग-अलग शरअ और मिन्हाज अर्थात रस्म और पूजा का विधान बना दिया है। अल्लाह चाहता तो सभी के लिए एक ही पूजा या इवादत का विधान बना देता। किन्तु, अल्लाह चाहता था जिसे जो तरीका बता दिया गया है उसी में उसको परखे। अत: इस गफ़लत में नहीं रहो और इन्सान की भलाई में लगे रहो यह सबसे बड़ी इवादत है, क्योंकि अन्त में सभी को अल्लाह के पास ही जाना है।

एक सूफी कहते हैं -

हमा कस तालिबे यारन्द चे हुशियार चे मस्त।
हमा जा ख़ानए इश्क़ अस्त चे मस्जिदे चे कुनिश्त।।

अर्थात् सब लोग उसी प्रीतम को खोज रहे हैं; क्या होशियार और क्या मस्त। सब घर उसी प्रेम का घर है, क्या मस्जिद और क्या मंदिर।

यदि, गीता और कुरान का उपदेश एक ही है तो क्यों हिन्दू और मुस्लमान आपस में लड़ते हैं? उन्हें तो इन्सान को एक ही ईश्वर का बंदा मानकर गले लगाना चाहिये, क्योंकि इंसान की नि:स्वार्थ सेवा करना ही ईश्वर की पूजा और सच्ची इवादत है।

अलौकिक अनुभूतियाँ

(निजी जीवनगत अनुभव)

श्री युगल किशोर प्रसाद

हिन्दी के वयोवृद्ध प्रतिष्ठत साहित्यकार, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् से सम्मानित, प्रकाशित रचनाएँ- **एकलव्य** (नाटक), **श्रेय से प्रेय** (उपन्यास), **कुम्हरे की बतिया** (कहानी संग्रह), **संहिता** (निबन्ध संग्रह)

मानव मन बहुत गहरा है। मनोवैज्ञानिकों ने हाल में किये गये शोध में माना है कि मनुष्य के मस्तिष्क में इतनी जगह है कि उसमें 2,500 टेराबाइट डाटा समा सकता है, यानी यदि संसार की पुस्तकों को कम्प्यूटर में डाल दिया जाये तो उसके लिए 3000 टेराबाइट जगह चाहिए। इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि ईश्वर प्रदत्त यह मस्तिष्क कितना विकसित है। इसी गहराई के आधार पर यह भी माना गया है कि मानव मन में ज्ञान का अक्षय भण्डार है; केवल अज्ञान का एक पतला-सा परदा उसे सच्चाई से अनजान बनाये हुए है। जब हम किसी एक विषय पर लगातार सोचते हैं तो मस्तिष्क में एक हथौड़ी की चोट-जैसी पड़ती है और कभी स्वप्न के रूप में तो कभी जागृत अवस्था में भी हमें सच्चाई की झलक दीख-सी जाती है, जिसे हम अलौकिक अनुभूति कह देते हैं। जो व्यक्ति अपने अज्ञान के परदे को जितनी शीघ्रता से फाड़ सकता है, उसे सत्य से साक्षात्कार उतना ही शीघ्र होते रहता है। अपने जीवन की कुछ ऐसी ही अलौकिक अनुभूतियों को यहाँ एक साहित्यकार के शब्दों में परोसा जा रहा है। सं.

सचेतन मनुष्य, अपने सांसारिक जीवन में विभिन्न अनुभवों एवं लौकिक-अलौकिक अनुभूतियों से गुजरता है। यह क्रिया जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त, जाने-अनजाने चलती रहती है। मातृ-गर्भ से बाहर आते ही नवजात को संसार का अनुभव मिलने लगता है। वह धीरे-धीरे, सर्वप्रथम अपनी माँ के वात्सल्य का अनुभव करता है। पलने में पड़े शिशु की मन्द मुस्कान को देखकर माँ आह्लाद से भर जाती है। कहते हैं कि शिशु को ईश्वर के रूप में देखकर माँ आह्लाद से भर जाती है। शिशु नित्य ही ईश्वर से साक्षात्कार कर मुस्कराता है। बात जो भी हो, उसकी मन्द मुस्कान बड़ी मोहक होती है। उसे शीत-उष्ण का भी अनुभव शैशवावस्था में ही होने लगता है। धीरे-धीरे उसे अपने आत्मीय जनों की पहचान होने लगती है।

जीवन की अगली अवस्थाओं- पोगण्डावस्था, किशोरावस्था, यौवनावस्था से लकर बुढ़ापा तक उसे सांसारिक जीवन के खट्टे-मीठे अनुभव होने शुरू हो जाते हैं। अगर वह सात्त्विक वृत्ति का हुआ, उसमें धर्म के प्रति थोड़ी भी सजगता हुई, तो उसे यदा-कदा अलौकिक अनुभूतियाँ होती हैं, जिनसे

धर्म के प्रति, ईश्वरीय सत्ता के प्रति, आस्था जगती है, विश्वास दृढ़ होता है, और वह अगर साधना में लग गया तो इष्ट-साक्षात्कार भी सम्भव हो पाता है।

मानव जीवन को 'जागृति, सुषुप्ति तथा चेतनाहीनता (स्वप्न) जैसी अवस्थाओं से गुजरना होता है जहाँ उसे विविध सांसारिक अनुभव होते हैं। जीव को सुषुप्तावस्था में कोई वस्तु वास्तविक प्रतीत होती है, किन्तु वही वस्तु जाग्रतावस्था में आने पर अवास्तविक प्रतीत होने लगती है। जाग्रतावस्था में वह जिन वस्तुओं की प्राप्ति के चिन्तन और उसकी प्राप्ति के उपायों में लगा रहता है, जिसकी पूर्ति अगर नहीं हो पाती है, तो मनोवैज्ञानिकों के अनुसार उसकी पूर्ति स्वप्न में होती है। गाढ़ी निद्रा में स्वप्न नहीं आते, लेकिन जो आदमी बराबर भौतिक उपलब्धियों के लिए भाग-दौड़ में व्यस्त रहता है उसे गाढ़ी नींद भी नहीं आती है, तन्द्रावस्था में, स्वप्न में इच्छित की प्राप्ति का क्षणिक सुख उसे मिलता है। किन्तु तन्द्रा-भंग होते ही स्वप्न की वास्तविकता प्रकट हो जाती है। भिखारी स्वप्न में अपने को राजमहल में पाता है, किन्तु तन्द्रा भंग होते ही वह अपने को अपनी टूटी मड़ई में पाता है। वास्तविक जगत् में भी राजा को रंक होते देर नहीं लगती, रंक भी अपने परिश्रम से धनवान् होता देखा गया है। यह जीवन का अनुभूत सत्य है।

सत्य तक पहुँचने के लिए स्रष्टा ने हमें मानव जीवन दिया है। जो इसके अन्वेषण में लगते हैं, उसे सत्य का साक्षात्कार हो जाता है। गाँधीजी ने अपनी आत्मकथा को 'सत्य का प्रयोग' कहा है। उन्होंने सत्य को पाया, और 'विश्व-वन्द्य' बन कर अमरता पायी। ऐसे सत्यनिष्ट के मन की गति सर्वत्र होती है, और उसी स्तर के व्यक्ति से उसके मन के तार जुड़ जाते हैं।

इस प्रसंग में देश के प्रथम राष्टपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की याद आती है। एकबार उन्होंने बापू को बताया कि वे महर्षि रमण से मिलने जा रहे हैं। बापू ने उनसे कहा कि मेरे मन में एक शंका है, उसका समाधान उनसे पूछ लेना। राजेन्द्र बाबू उनसे मिले और बापू की शंका उन्हें बताई। महर्षि ने कहा, उनकी शंका का समाधान हो चुका है, जाकर पूछ लेना। राजेन्द बाबू को आश्चर्य हुआ, किन्तु जब वे महर्षि से मुलाकात कर लौटे तो बापू ने उन्हें पहुँचते ही कहा, शंका का समाधान हो चुका है, यह राजेन्द्र बाबू के लिए नया अनुभव था।

मुझसे एकबार श्री राम पदारथ दासजी ने पूछा, 'वेदान्ती' और 'योगी बाबा' में कौन बड़ा हैं? स्वप्न में दोनों महासंत एक दूसरे का आलिंगन करते दिखाई पड़े। मेरी शंका मिट गयी।

इन पंक्तियों का निषादवंशी लेखक अपने को बड़भागी मानता है। आगे अन्य कई अलौकिक अनुभवों का विवरण दिया गया है।

इन पंक्तियों का लेखक वर्तमान नालन्दा जिले का मुरगावाँ गाँव में पला बढ़ा। वह मेरे पिताजी का ननिहाल है। वहाँ मुझे एक सिद्ध महात्मा, परम पूज्य योगी बाबा का आर्शीवाद प्राप्त हुआ। योगी बाबा (पूज्य चरण आत्मानन्द सरस्वती) पास के गाँव कृपाभेल में बाबू गोरख सिंह के दरवाजे बाइस वर्षों तक रहे। मुरगावाँ के बाबू केदारनाथ सिंह भक्त थे, जब भी 'राम' कहते उनकी आँखें छलछला उठतीं। सन् 1960 में वे पटना से बोरिंग रोड, पटना स्थित श्री सीताराम सदन और उससे आगे वर्तमान लक्ष्मी कम्पलेक्स) मुरगावाँ आए, तो योगी बाबा भी पधारे। नालन्दा कॉलेज में पढ़ते वक्त बाबा श्री विसेसर लाल तमोली (पुल पर बड़ी मस्जिद के सामने) के घर आते-जाते रहनेवाले बाबा का दर्शन मुझे सुलभ हुआ। उनके आर्शीवाद और अनुग्रह से मैंने नौकरी पायी।

एक बार अन्तर्वीक्षा के लिए मैं बिहारशरीफ से पटना आने को था। खादी बोर्ड में रिक्ति निकली थी। बाबा बिहारशरीफ के पार्श्व में अवस्थित बराड़ा गाँव में बाबू रामोतार सिंह के घर ठहरे हुए थे। मैंने सोचा कि उनके दर्शन कर लूँ, तब पटना के लिए प्रस्थान करूँ। बाबा ने रोका, मेरे हठ करने पर

उन्होंने मेरे दायें पैर को थपथपा दिया, और बोले, जाओ, सावधानी से जाना। इन्टरभ्यू के बाद जब कई साथियों के साथ यारपुर की सड़क से गुजरता तो दाएँ पैर में एक स्कूटर वाले ने धक्का दे दिया। मैं गिर पड़ा। मेरा एक साथी, जिसका शीशे में मढ़ा मैट्रिक का सर्टिफिकेट मेरे थैले में था, मुझे उठाने के बजाय कहने लगा, 'देखो तो शीशा तो नहीं टूट गया।' मैं किसी तरह उठ खड़ा हुआ। दो चार डग चला, तो पाया कि मेरा चोट खाया पैर साबित है। तब मेरी आस्था धर्म के प्रति बढ़ी। उन दिनों मैं श्री रामनंदन बाबू के इंटीच्यूट में निःशुल्क शार्ट हैण्ड टाइपिंग सीख रहा था। वे पूज्यपाद योगी बाबा के परम शिष्य थे।

उसी तरह मुरगावाँ गाँव में एक बार अवर्षण हो गया। संयोगवश योगी बाबा वहाँ पधारे और लोगों से कहा कि शिवलिंग को गाय के दूध में डुबाओ, वर्षा होगी। उसके दो दिन पहले गाँव वालों ने एक पुरोहित द्वारा यह काम कराया था, लेकिन वर्षा क्या होती, दूर-दूर तक बादलों का अता-पता नहीं था। बाबा ने कहा, मैं कह रहा हूँ, डुबाकर तो देखो। वे गाँव के बड़े आदमी बच्चू बाबू के दरवाजे ठहरे थे। उन्होंने अभिषेक की सारी व्यवस्था करायी। बाबा उठे और शिव मंदिर तक आए, मैं भी साथ लग गया। बाबा ने हुमाद की आहुति दी, आंखें मूंदकर कुछ बुदबुदाये कीर्तन कर रहे लोगों ने देखा कि चारों ओर से बादल दौड़े आ रहे हैं। यह चमत्कार ही था। लगातार तीन दिनों तक मुसलाधार वर्षा हुई। यह मेरे लिए दिव्य अनुभव था।

मेरी सेवानिवृत्ति के बाद ब्रह्मलीन योगी बाबा ने स्वप्न में आकर कहा कि महेन्द्र बाबा मणिराम दास को पाँच सौ रुपये दे आओ।

इसके बाद भी कई अलौकिक अनुभूतियाँ स्वप्न में हुईं।

(क) एक बार भोर में मैंने स्वप्न में देखा कि सूर्योदय होने ही वाला है, बल्कि सूर्योदय हो चुका है। मैं सूर्य देवता को नमस्कार कर रहा हूँ- बगल के पीपल वृक्ष के पत्ते-पत्ते से गायत्री मन्त्र की ध्वनि निकल रही है। अब भी, जब मैं संकटापन्न होता हूँ श्री योगीबाबा (ब्रह्मलीन) स्वप्न में दर्शन देते हैं। जब भी देवराहा बाबा श्री योगी बाबा महा प्रयाण के लिए संकल्पित हुए तो मैंने स्वप्न में देखा कि देवराह बाबा सवारी रोकवाकर मुझे आश्वस्त किये। तुरंत बाद श्री योगी बाबा पैदल जाते हुए दिखे, मैंने कहा, बाबा मैं रुपये लेकर आता हूँ। सवारी से जाइये वे बोले मैं पैदल ही चला जाउंगा। मैं मूढ़ समझ नहीं सका कि दो महान् आत्माएँ संसार से विदा पाने वाली है।

(ख) मैं आई.टी.आई. दीघा, पटना में पदस्थापित था, मुझे विरोधी संघवालों ने बोकारो जहाँ आशुलिपि व्यवसाय भी नहीं था, षड्यन्त्र करके स्थानान्तरित करा दिया। मैं निराश था। स्वप्न में मैंने अपने को एक सूखे कुएँ में गिरा पाया, कूप का मुँह लोहे की जाली से बंद था, एक आदमी के घुसने निकलने की जगह थी। मैंने देखा पूज्य चरण योगी बाबा कुएँ में उतरे हैं। सिर पर हाथ रखकर कर रहे हैं- घबराओ नहीं, मैं तुम्हारे साथ हूँ, सात महीने बिना पगार के रहा और तब स्थानान्तरण रद्द हुआ।

ऐसा ही प्रत्यक्ष अनुभव मुझे तब हुआ जब अनुदेशक पद पर मेरी नियुक्ति में हीला-हवाला होने लगा। निदेशक श्री रामानन्द बाबू के आदेश के बाद भी नियुक्ति पत्र नीचे के अधिकारियों ने नहीं निकाला। मैं बोरिंग कैनाल रोड से पैदल रोज आई. टी.आई. दीघा जाता था, जहाँ कुर्जी मोड़ पर कालीजी का मन्दिर था। मुझे जानकारी मिली कि रामानन्द बाबू काली के उपासक हैं। आदतन मैं आते जाते कालीजी की प्रतिमा के सामने शीश झुकाता था। नियुक्ति पद मिलने में देर होते देख, मैंने कालीजी से निवेदन किया। हे माता, निदेशक महोदय आपके भक्त हैं। आप ही उन्हें प्रेरित करें। संचिका पर आदेश के छब्बीसवे-सत्ताइसवें दिन मेरी प्रार्थना के अगले दिन, निदेशक महोदय ने पी.ए.

श्रीराम बालक ठाकुर से पूछा- आर. आई.ओ. के आशुलिपिक को आशुलिपि अनुदेशक के पद पर नियुक्ति की संचिका पर मैंने आदेश किया था, नियुक्ति पत्र हस्ताक्षर के लिए मेरे पास क्यों नहीं आया? पी. ए. ने बताया कि संचिका संयुक्त निदेशक के पास लंबित है। निदेशक ने अपने कक्ष में बुलाकर बुरी तरह डाँटा। जब मैं सचिवालय पहुँचा तो, मुझे सारी जानकारी मिली। पी. ए. ने बताया कि नियुक्ति पत्र तैयार हो रहा है। दीघा के प्राचार्य श्री सीताराम शरण ने कहा कि आप जरूर पाँच सौ रुपये, निदेशक को घूस में दे आए हैं, जबकि उन दिनों अनुदेशक का वेतन 335-555 रु. था, महँगाई भत्ता मिलाकर चार सौ रुपये मिलते होंगे। मैं अपनी प्राचार्य को कैसे बताता कि मैंने काली माँ से विनती की थीं।

अनंतश्री विभूषित परम पूज्य योगी बाबा की मुझपर असीम कृपा थी। जब मुझे दो बेटियाँ हुयीं, तो एक दिन वे बोरिंग रोड में आई. टी. आई. दीघा के चिकित्सा पदाधिकारी के आवास में ठहरे थे, मैं उनके दर्शनार्थ गया तो वे बोले- तुमको दो बेटियाँ हो गयीं- जबकि मैंने उन्हें संकोचवश एक ही बेटी के होने की सूचना दी थी... अगली बार जब तुम्हारी पत्नी गर्भवती होगी तब बतलाना, मैं बेटा बनाना जानता हूँ... मैंने कथा, बाबा अब पता भी चलता है कि कब गर्भ ठहरता है... वे बोले ठीक कहता है. .. जाओ, मैंने कहा है तो बेटा ही होगा... उनका आर्शीवाद फला और लगातार तीन बेटे हुए। जब बड़ा बेटा पैदा होने को हुआ तो कुर्जी अस्पताल में प्रसव के लिए मैंने पत्नी को भर्त्ती कराया... वहाँ के चिकित्सक बोले कि बड़ा आपरेशन करना होगा... मैं तो घबरा गया... मेरी पत्नी दो प्रसव के बाद बतलाया कि जब मुझे स्टेचर पर प्रसव कक्ष ले जाने की तैयारी हुयी, तो मैं सबको भूल गयी। एक योगी बाबा ही याद आए। मैंने मन में ही कहा... बाबा, अब आपसे भेंट नहीं हो पाएगी... ऐसा मैं सोच ही रही थी कि बच्चा स्टेचर पर ही गर्भ से बाहर आता दिखाई दिया- जल्दी से मुझे प्रसूति कक्ष में पहुँचाया गया... यह तो लौकिक जगत में अलौकिक अनुभव था।

उसी तरह जब दूसरा या तीसरा लड़का पैदा होने को हुआ तो स्वप्न में मुझे देवर्षि नारद के दर्शन हुए... वह भी कुर्जी अस्पताल के बाहर... मैं आववस्त हो गया कि लड़का ही पैदा होगा। उसी समय देवर्षि ने संकेत किया कि तुम अपना मकान वहाँ बनवाओगे जहाँ के लोग पशु पालक अर्थात् यादववंशी होंगे- वैसा ही हुआ- मैंने अपना छोटा आवास विग्रहपुर-यादव टोले के ठीक बगल में बनवाया जहाँ मैं सपरिवार रह रहा हूँ... बिहारी राम पथ के उत्तरी भाग में पूरबी छोर पर...

उसी तरह जब पहला सुपुत्र चार साल का हुआ तो योगी बाबा ने रवाईच ठाकुरबाड़ी (बख्तियारपुर प्रखंड कार्यालय के आस-पास) यज्ञ आहूत किया, मैं खबर पाकर शाम को वहाँ पहूँचा। बाबा बोले- अपने बाल-बच्चों को भी ले आओ... दूसरे दिन जब मैं आई.टी.आई. दीघा के सरकारी आवास में आया तो पत्नी बोली- भोर में बाबा सपने में मुझे लिवाने आए थे... ऐसी थी उनकी अहैतुक कृपा!

आज का बुद्धिजीवी आदमी ऐसे अनुभवों, अलौकिक अनुभूतियों पर विश्वास नहीं करता, किन्तु जीवन में कोई क्षण ऐसा अवश्य आता है जब नास्तिक को भी अपनी भूल का अहसास होता है। आज का मनुष्य भौतिकता में इस कदर फँसा है कि उसे अलौकिक अनुभूति हो ही नहीं पाती, वास्तविक जीवन में जागते हुए भी वह भोग में लिप्त रहता है, स्वप्न में भी।

मुझे तो सत्यनिष्ठ बाबू केदारनाथ सिंह ने अपने देहान्त के बाद भी नालन्दा कॉलेज के परिसर में मेरे सिर पर हाथ रखकर कहा था, बेटा सत्य से बढ़कर अन्य कुछ नहीं, स्वप्न में मैंने उनका संदेश सुना।

न्यू विग्रहपुर,
बिहारी राय पथ,
पटना-1

❑

पौराणिक कथा

महाराज परीक्षित् का अनशन व्रत

डा. जयनन्दन पाण्डेय
सेवानिवृत्त संस्कृत अध्यापक, राष्ट्रपति पुरस्कार
से सम्मानित, आध्यात्मिक विषयों पर लेखन

'श्रद्धेय मुनियो एवं ऋषियो! आज मैं भगवान् श्रीकृष्ण की पावन कथा श्रीमद्भागवत सुनाता हूँ। इसे दत्तचित्त होकर सुनें, हृदयंगम करें और समस्त शोक-सन्तापों एवं सन्देहों से मुक्त हो जायें। आपलोगों ने समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया होगा और लगभग समस्त साधनाएँ सिद्ध कर ली होंगी, हो सकता है उनपर आपका पूर्ण अधिकार हो गया होगा, किन्तु उनमें भी जो सर्वश्रेष्ठ और सर्वोपरि है, उसे आज तक आप नहीं जान पाए होंगे। जो अभयपद को प्राप्त करना चाहता है, उसके लिए सर्वात्मा सर्व शक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण का पवित्र और सुमधुर नाम ही पर्याप्त है। जब यह नाम सुनाई पड़ता है तो हृदय से प्रेम की धारा बह चलती है। यह भागवत-कथा भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अथाह भक्ति उत्पन्न करती है। यह तो भक्ति का स्रोत है।' - इसी कथा से

महाराज परीक्षित् को जब यह सूचना मिली कि आज के सातवें दिन मुझे शृंगी ऋषि के शाप से तक्षक सर्प डसेगा, और मेरी मृत्यु हो जायगी तो वे अपना सर्वस्व त्याग कर गंगा तट पर अनशन व्रत के लिए प्रस्थान कर गए। कुछ ही क्षण बाद यह सूचना पूरे हस्तिनापुर में फैल गई। इस सूचना को जिसने भी सुना, स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण तथा मन्त्रिगण आदि, सभी राजा परीक्षित् के पीछे-पीछे हो गए। सभी उनसे हस्तिनापुर लौटने की प्रार्थना करने लगे, याचना करने लगे। परन्तु महाराज परीक्षित् ने इस ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया और नहीं तो किसी को कोई उत्तर ही दिया। राजा, भगवान् का ध्यान और स्मरण करते हुए आगे बढ़ गए। उनके मन्त्रियों और पार्षदों ने उन्हें पैदल चलते देख उनके लिए हाथी, घोड़े तथा पालकी की व्यवस्था की, परन्तु सब व्यर्थ। उन्होंने अपने मन्त्रियों के अनुनय तथा विनय पर ध्यान नहीं दिया और वे सतत आगे बढ़ते गए। रास्ते में भोजन और जल ग्रहण करना भी उन्होंने त्याग दिया।

अचानक महाराज के विचार में इस प्रकार का परिवर्तन देख लोग अपनी-अपनी कल्पना-शक्ति के आधार पर अनुमान करने लगे और अनेक चर्चाएँ होने लगीं, कुछ लोग महाराज के इस महान् वैराग्य और त्याग के रहस्य को खोज निकालने में लग गये और सफलता भी प्राप्त कर ली। महाराज परीक्षित् के वैराग्य का कारण पता चला कि शमीक ऋषि के पुत्र शृंगी ने उन्हें शाप दे दिया है, जिस कारण सात दिनों में तक्षक सर्प के काटने से उनकी मृत्यु हो जायगी।

यह दु:खद समाचार चारो दिशाओं में बिजली की तरह फैल गया और सुदूर वनों तक में भी यह सूचना शीघ्र पहुँच गई। तपस्या और साधनारत ऋषि मुनि, सन्त एवं साधकगण अपने-अपने हाथों में दण्ड एवं कमण्डल लिए गंगा के किनारे पहुँचने लगे। श्रीमद्भागवत में लिखा है-

अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनः शरद्वा-
नरिष्टनेमिर्भृगुरङ्गिराश्च।
पराशरो गाधिसुतोऽथ राम
उतथ्य इन्द्र प्रमदेध्म बाहौ।

(श्रीमद्भागवत। अ. 19/प्र.स्क. 091)

राजा परीक्षित् गंगा के पावन तट पर अनशन व्रत के लिये जहाँ बैठे थे, वहाँ अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, शरद्वान्, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, इध्मवाह, मेधातिथि, देवल, भारद्वाज, गौतम, पिप्लाद, मैत्रेय, अगस्त, भगवान् व्यास, नारद के अतिरिक्त कई श्रेष्ठ देवर्षि, महर्षि, ब्रह्मर्षि तथा राजर्षियों का शुभागमन हुआ।

इस प्रकार विभिन्न गोत्रों के मुख्य-मुख्य ऋषियों को उपस्थित देखकर राजा परीक्षित् ने सबं का यथायोग्य सत्कार किया, और उनके चरणों की वन्दना की। राजा ने विनम्रतापूर्वक उन ऋषियों से कहा कि आप कुछ ऐसा करें कि सात दिनों में मुझे मुक्ति मिल जाय। आसन्न मृत्यु के कर्त्तव्य मुझे बतलाइए। मेरे पास समय नहीं है। ज्ञान की लम्बी-चौड़ी बातें करेंगे तो सात दिनों का समय पूरा हो जायगा। कृपया मुझे ऐसी बातें बताइए, जिससे मैं परमात्मा के चरणों में लीन हो जाऊँ। मुझे मार्ग दिखलाइए तथा ऐसी कथा सुनाइए जिससे मुझे मुक्ति मिल जाय।

महाराज परीक्षित् की प्रार्थना पर ऋषिगण सोचने लगे कि हम सब भी तो मृत्यु के डर से डरते हैं। अन्त समय में प्रभु का नाम होठों पर आना मुश्किल बात है। मात्र सात ही दिनों में राजा को मुक्ति कैसे मिल सकती है, यह तो असंभव एवं अशक्य है। इससे सब ऋषि महाज्ञानियों को भी मृत्यु का भय सताता है। अन्त समय में, श्रीराम का नाम मुख में आना बड़ा मुश्किल होता है। सन्त तुलसी ने 'बाली' के मुख से कहलाया है-

जन्म-जन्म मुनि जतन कराहीं।
अन्त राम कहि आवत नाहीं॥

कोई भी ऋषि राजा को उपदेश देने को तैयार नहीं हुए। इसके बाद राजा परीक्षित् ने पुनः बल देते हुए निवेदन किया कि आपलोग कुछ तो बताइए। मेरे प्रश्न और मेरी याचना पर पुनः विचार कीजिए कि मुझे इस समय क्या करना चाहिए, चूँकि मेरी मृत्यु निकट है। राजा के विशेष अनुरोध पर ऋषि समुदाय में से एक मुनि खड़े हुए और कहने लगे कि जब तक समय मिले, तब तक यज्ञ करना चाहिए या फिर जप, दान, धर्म, पूजा, पाठ या तीर्थाटनादि करते रहना चाहिए।

एक दूसरे मुनि ने कहा कि ज्ञान से कैवल्य (मोक्ष) प्राप्त हो सकता है। तीसरे ने कहा कि शास्त्र विहित कर्म करना चाहिए। कुछ कहने लगे कि ऐसे समय में केवल भक्ति करनी चाहिए, क्योंकि भक्ति से ही भगवान् प्राप्त हो सकते हैं। इस प्रकार विभिन्न विचारों के बीच कोई निश्चित मार्ग दिखाई नहीं पड़ रहा था; मुक्ति का कोई एक सरल उपाय नहीं सूझ रहा था।

राजा परीक्षित् सोचते हैं कि ऐसे समय में केवल भगवान् नारायण ही मुझपर कृपा कर सकते हैं। मैं परमात्मा की ही शरण लूँगा। वे मेरी उपेक्षा नहीं करेंगे। मैं पापी तो हूँ, लेकिन पाण्डु-वंशीय भी हूँ। अब बिना ईश्वर का मेरा कोई नहीं है।

परीक्षित् ने ईश्वर का आश्रय लिया, और उनकी स्तुति की। भगवान् श्रीकृष्ण की याद करते हुए राजा ने कहा, ''तूने मेरी रक्षा माता के गर्भ में ब्रह्मास्त्र से की थी, आज भी मेरी रक्षा तू अवश्य करोगे। हे द्वारकानाथ! तेरे सिवा अब मेरा कोई सहारा नहीं।''

दुष्टतमोऽपि दयारहितोऽपि कृष्ण तवास्मि न चास्मि परस्य।

हे द्वारकानाथ! आपने मेरा जन्म सुधारा है, अब मेरी मृत्यु भी सुधार दीजिए। मैं आपकी शरण में हूँ। **'दूरस्थोऽपि समीपस्थो यो यस्य हृदि वर्तते'** नारायण ने राजा परीक्षित् के आर्तनाद को सुना और उन्होंने व्यासनन्दन श्री शुकदेव को प्रेरणा दी कि वहाँ जाओ। शिष्य योग्य है। परीक्षित् का जन्म सुधारने के लिए स्वयं श्री कृष्ण आये थे, किन्तु मुक्ति देने का अधिकार केवल शिवजी को है, इसलिए भगवान् शिवजी से कहा। यही कारण था कि भगवान् शिव का अवतार शुकदेवजी वहाँ पधारे। संहार का कार्य शिवजी का है, इसीलिए परीक्षित् की मृत्यु को सुधारने के लिए शुकदेव जी पधारे।

गंगा के पावन तट पर अकस्मात् समागत शुकदेवजी के स्वरूप का वर्णन भागवतकार ने इस प्रकार किया है-

तत्राभवत् भगवान् व्यासपुत्रो
यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः।
अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो
वृतश्च बालैरवधूत वेषः॥

तं द्व्यष्टवर्षं सुकुमारपादं
करोरुबाह्वंसकपोलगात्रम्।
चार्वायताक्षोन्नसतुल्यकर्णं
सुभ्र्याननं कम्बुसुजातकण्ठम्॥

श्रीमद्भागवत। अ. 19। प्र. स्क. 25/26

किसी को कोई अपेक्षा नहीं रखनेवाले व्यासनन्दन भगवान् शुकदेवजी वहाँ प्रकट हो गए। उनकी अवस्था सोलह वर्ष की है। चरण, हाथ, जंघा, कंधा, कपोल, तथा अन्य सर्वांग बहुत ही सुन्दर हैं। वे दिगम्बर हैं। वक्षःस्थल विशाल है।

श्रीशुकदेवजी के आगमन से चारों ओर प्रकाश फैल गया। लोग चकित हुए कि कहीं सूर्य नारायण तो धरती पर नहीं उतर गए। मुनिगण समझ गये कि ये तो शंकरजी के अवतार श्री शुकदेवजी पधारे हैं। शुकदेवजी का तेज महाराज परीक्षित् की आँखें सहन नहीं कर पा रही थी। वे सद्यः प्रेमरूप भगवान् का साक्षात् रूप लग रहे थे। मुखमण्डल पर काले घुघराले केशों की लटाएँ ऐसी लग रही थीं, मानों नागिनें फन लहरा रही हों। चेहरे पर मन्द मुस्कान थीं।

महाराज परीक्षित् मन्दगति से चलकर अतिशय विनम्रतापूर्वक श्रीशुकदेवजी के निकट आए और भावातिरेक में रुँधे गले से धीमी आवाज में रुक-रुक कर बोलने लगे- ''ब्रह्मस्वरूप भगवान्! आपने यहाँ पधारने का जो अनुग्रह किया है, उसका आभार प्रकट करने के लिए न मुझमें शक्ति है और नहीं मेरे पास शब्द हैं। वास्तव में यह मेरा परम सौभाग्य है कि इतनी सुगमता से आपके दर्शन का लाभ मुझे प्राप्त हुआ है। वास्तव में मेरे पूर्वजों का यह पुण्य प्रताप का ही फल है जो आपने मुझ पर कृपा की है। श्रीशुकदेवजी का अलभ्य दर्शन पाकर महाराज परीक्षित् अपने आप को कृत्य-कृत्य समझ रहे थे।

गंगा के उस पावन तट पर ऋषि-मुनियों के साथ महर्षि वेदव्यासजी भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने जब अपने पुत्र श्री शुकदेवजी को वहाँ उपस्थित देखा तो आत्मविभोर हो गए। व्यासजी मन ही मन सोंचते हैं कि यह मेरा भी सौभाग्य है कि मेरा बेटा श्रीमद्भागवत की कथा कहेगा और मैं सुनूँगा।

राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी से कहा-

अहो अद्य वयं ब्रह्मन् सत्सेव्याः क्षत्रबन्धवः।
कृपयातिथिरूपेण भवद्भिस्तीर्थकाः कृताः॥
येषां संस्मरणात् पुसां सद्यः शुद्ध्यन्ति वै गृहाः।
किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः॥

श्रीमद्भागवत। अ. 19। प्र.स्क.- 32, 33

हे भगवान्! मैं बड़भागी हूँ, क्योंकि अपराधी क्षत्रिय होने पर भी हमें सन्त-समागम का अधिकारी समझा गया। आज कृपापूर्वक अतिथि रूप में पधारकर आपने हमें तीर्थ के तुल्य पवित्र बना दिया है। आप जैसे महात्माओं के स्मरण मात्र से ही गृहस्थों के घर तत्काल पवित्र हो जाते हैं। फिर दर्शन, स्पर्श, पाद प्रक्षालन और आसनदानादि का सुअवसर मिलने पर तो कहना ही क्या है।

परीक्षित् के द्वारा विनम्रतापूर्वक इतनी बातों को कहे जाने पर शुकदेवजी ने महाराज परीक्षित् को अपने निटक बैठाया और कहा, 'हे राजन्! इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप सरल और सज्जन हैं तथा नैतिक आचरण का दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाले हैं। आपके जीवन की महत्ता के कारण आज यह विशाल ऋषि-समुदाय आपके चारों ओर एकत्र हैं। अन्यथा ये मुनिवृन्द जप-तप और आध्यात्मिक अनुशासन के परिपालन में सदा एकान्तवासी, अपने आश्रमों से बाहर नहीं आते, और परमतत्त्व की प्राप्ति के लिए आपकी सफलता की प्रार्थना नहीं करते। यह दया और दान का कोई सामान्य कृत्य नहीं है। यह तो अपने-अपने जन्मों की सुन्दर कीर्तियों द्वारा अर्जित किया गया है।

महाराज परीक्षित् श्रीशुकदेवजी के मुख की ओर बड़े आदर, भक्ति एवं प्रशंसा के भाव से देखते रहे। उसके बाद परीक्षित् ने कहा-

अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम्।
पुरुषस्येह यत्कार्यं प्रियमाणस्य सर्वथा॥

श्रीमद्भागवत। अ. 19। प्र.स्क. 36

मैं आपसे परम सिद्धि के स्वरूप और साधन के सम्बन्ध में पूछ रहा हूँ। जो पुरुष सर्वथा मरणासन्न है, उसे क्या करना चाहिए? मनुष्य मात्र का कर्तव्य क्या है? उसे किसका श्रवण, जप, स्मरण और भजन करना चाहिए? भगवान् शुकदेवजी का हृदय पिघल गया। उन्होंने सोचा, शिष्य सुयोग्य है। जब किसी गुरु को योग्य शिष्य मिल जाता है, तब उसे प्रसन्नता होती है। बल्कि अधिकारी शिष्य मिल जाने पर उसका दिल कहता है कि उसे सर्वस्व दे दूँ। गुरु

ब्रह्मनिष्ठ हो और निष्काम हो तथा शिष्य प्रभु दर्शन के लिए आतुर हो तो सात दिवस तो क्या सात मिनट में प्रभुदर्शन हो सकते हैं।

शुकदेवजी कहते हैं- 'राजन्! तू घबराता क्यों है? अभी सात दिन बाकी है। मैं तेरे पास कुछ लेने नहीं बल्कि देने आया हूँ। मुझे जो आनन्द मिला है और परमात्मा के जो दर्शन हुए हैं, वही दर्शन तुझे कराने आया हूँ। मुझे जो जीवन में मिला है उसे तुझे देने आया हूँ। मेरे पिताजी भूख लगने पर दिन में एकबार केवल एक बेर खाते थे, किन्तु इस कथा में इतना भजनानन्द मिलता है कि मुझे तो एक वेर भी खाने का स्मरण नहीं रहता। मेरे पूज्य पिताजी तो वस्त्र पहनते थे, लेकिन निरन्तर प्रभु चिन्तन में मेरे वस्त्र कब और कहाँ छूट गये, यह भी मुझे याद नहीं। सात दिनों में तुझे मैं कृष्ण-दर्शन कराऊँगा। मैं बादरायणि हूँ। ('बादरायणः' का अर्थ व्यासजी होता है और बादरायण की संतान 'बादारायणि' अर्थात् शुकेदवजी होता है।)

शुकदेवजी का सारा जीवन वैराग्यमय है। शुकदेवजी बादरायण व्यासजी के पुत्र हैं। व्यासजी सारा दिन जप और तप किया करते थे। भूख लगने पर सारे दिन में केवल एक वेर खा लिया करते थे। केवल वेर का ही आहार लिया करते थे। इसीलिए उनका नाम बादरायण पड़ा। ऐसे बादरायण के पुत्र श्रीशुकदेवजी हैं। जिनमें खुद ज्ञान और वैराग्य विद्यमान हो, वही दूसरों को सुधार सकता है। शुकदेवजी इन दोनों से पूर्ण थे।

श्रीशुकदेवजी बोले- 'हे राजन्! अपने मन को सांसारिक विचारों से समेट कर श्री हरि के ध्यान में स्थिर कर लो। वे ही समस्त हृदयों के आकर्षण केन्द्र हैं। मैं तुम्हें दैविक ज्ञान का उपदेश करूँगा, भगवत् तत्त्व का ज्ञान कराऊँगा। इसे तुम एकाग्रचित होकर सुनो। इससे बढ़कर न कोई कर्म है, न योग है, न कोई आध्यात्मिक अनुशासन है और न कोई व्रत या तप। हे परीक्षित्, यह संसार विशाल सागर है और इसमें होनेवाले परिवर्तन इसमें प्रवाहित होनेवाली धाराएँ हैं। इस सागर को पार करने के लिए मनुष्य की यह देह नाव है, श्रीहरि की कथा इसके खेने की पतवार है और श्रीहरि स्वयं ही इस नाव के खेवनहार हैं। आज यह पवित्र उपकरण तुम्हें प्राप्त है। तुम्हें जिस सहायता की आवश्यकता है, मैं वही प्रदान करने के लिए उपस्थित हूँ।

राजन्! जो समय बीत गया उसका स्मरण मत करो। भविष्य का विचार भी मत करो। सिर्फ वर्तमान को सुधारो। सात दिन बाकी रह गये हैं, नारायण का स्मरण करो, तुम्हारा जीवन सुधर जायेगा।

इतना कहकर शुकदेवजी ने मुनियों को सम्बोधित किया- 'श्रद्धेय मुनियो एवं ऋषियो! आज मैं भगवान् श्रीकृष्ण की पावन कथा श्रीमद्भागवत सुनाता हूँ। इसे दत्तचित्त होकर सुनें, हृदयंगम करें और समस्त शोक-सन्तापों एवं सन्देहों से मुक्त हो जायें। आपलोगों ने समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया होगा और लगभग समस्त साधनाएँ सिद्ध कर ली होंगी, हो सकता है उनपर आपका पूर्ण अधिकार हो गया होगा, किन्तु उनमें भी जो सर्वश्रेष्ठ और सर्वोपरि है, उसे आज तक आप नहीं जान पाए होंगे। जो अभयपद को प्राप्त करना चाहता है, उसके लिए सर्वात्मा सर्व शक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण का पवित्र और सुमधुर नाम ही पर्याप्त है। जब यह नाम सुनाई पड़ता है तो हृदय से प्रेम की धारा बह चलती है। यह भागवत-कथा भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अथाह भक्ति उत्पन्न करती है। यह तो भक्ति का स्रोत है।

जो भगवान् की लीलाओं और कथाओं का गान करते हैं, सुनते हैं और उनका आनन्द लेते हैं, उनसे उपदेश प्राप्त नहीं करते हैं। वे ही वास्तव में सच्चे भक्त हैं। भागवत द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर दृढ़ता से चलनेवाले लोग ही भगवान् के सच्चे भक्त हैं। भागवत-कथा भक्तों को भगवान् से मिलाती है, उन्हें आपसे में आबद्ध करती है। यह भक्तों के हृदय को भगवत्तत्त्व के साथ ऐसा तन्मय कर देती है कि वे देवत्व प्राप्त कर लेते हैं। परीक्षित् भगवान् तो मूल रूप से श्रद्धावान् भक्तों, सज्जनों, साधुओं और सन्तों के संरक्षण तथा उद्धार के लिए अवतार लेते हैं।

इस प्रकार श्रीशुकदेवजी ने सात दिनों में श्रीमद्भागवत कथा के द्वारा श्रीकृष्ण की समस्त लीलाओं का वर्णन राजा परीक्षित् को सुनाया। कथा समापन के पूर्व श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित् से कहा-

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हृदिस्थं कुरु केशवम्।
म्रियमाणो ह्यवहितस्ततो यासि परां गतिम्॥

श्रीमद्भागवत/अ. 03। द्वादश स्क. 49

परीक्षित् अब तुम्हारी मृत्यु का समय निकट आ गया है, अब सावधान हो जाओ। पूरी शक्ति से और अन्तःकरण की सारी वृत्तियों से भगवान् श्री कृष्ण को अपने हृदय-सिंहासन पर विराजमान कर लो। ऐसा करने से अवश्य ही तुम्हें परमगति की प्राप्ति होगी।

भागवत में लिखा है-

म्रियमाणैरभिध्येयो भगवान् परमेश्वरः।
आत्मभावं नयत्यङ्ग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः॥

श्रीमद्भागवत। अ० 04। द्वादश स्क. पू.

जो लोग मृत्यु के निकट पहुँच रहे हैं, उन्हें सब प्रकार से परम ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् का ही ध्यान करना चाहिए। परीक्षित सबके परम आश्रय और सर्वात्मा भगवान् अपना ध्यान करनेवाले को अपने स्वरूप में लीन कर लेते हैं।

श्रीशुकदेवजी शौनकादि समस्त ऋषियों से कहा-

तक्षकः प्रहितो विप्राः क्रुद्धेन द्विजसूनुना।
हन्तुं कामो नृपं गच्छन् ददर्श पथि कश्यपम्॥

श्रीमद्भागवत। अ० 06। द्वादश स्क. 11

मुनिवर शृंगी ने क्रोधित होकर परीक्षित् को जो शाप दिया था अब उनका भेजा हुआ तक्षक साँप राजा परीक्षित् को डसने के लिए उनके पास चल पड़ा। तक्षक नामक नाग जब अपने घर से राजा परीक्षित् को डसने के लिए चला तब उसने रास्ते में चलते हुए कश्यप नामक ब्राह्मण का रूप धारण कर लिया। रास्ते में चलते हुए कश्यप नामक ब्राह्मण से भेंट हुई। उस नाग ने कश्यप से पूछा कि आप कौन हैं? इतनी शीघ्र गति से आप कहाँ जा रहे हैं?

कश्यप ने कहा- 'आपको पता नहीं कि महाराज परीक्षित् को तक्षक नामक नाग डसनेवाला है। मैं मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण हूँ। मैं उन्हें विषमुक्त करने के लिए उनके पास शीघ्रता से जा रहा हूँ।'

कश्यप ने ब्राह्मण रूपधारी तक्षक नाग से कहा- 'हे विप्रेन्द्र! मेरे पास प्रबल विष-विनाशक मन्त्र है। अतएव, उनकी आयु अगर शेष होगी तो मैं उन्हें जीवित कर दूँगा। तक्षक ने कहा, 'हे मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण! मैं वही तक्षक नाग हूँ और राजा परीक्षित को डसने के लिए जा रहा हूँ। मेरा विष इतना प्रबल है कि मेरे डस लेने के बाद आप उन्हें जीवित नहीं कर सकेंगे। अतः आप यहीं से लौट जाँय।'

कश्यप ब्राह्मण ने कहा- 'ब्राह्मण के द्वारा शापित उस राजा को आपके द्वारा काट लिए जाने पर मैं निश्चित रूप से उसे जीवित कर दूँगा।'

तक्षक ने कहा- 'मेरे द्वारा राजा को काट लिये जाने पर आप मन्त्र द्वारा अगर जीवित कर देंगे तो इसका प्रमाण मुझे आप पहले दिखाइए। मैं सामने अवस्थित वट वृक्ष को अपने विषैले दाँतों से डँसता हूँ।'

कश्यप ने कहा- 'आप इसे काट लें, अथवा इसे जलाकर भस्म कर दें, तब भी मैं अपने मन्त्र के प्रभाव से इसे पुनः उसी रूप में हरा-भरा कर दूँगा।

नागराज तक्षक ने उस वटवृक्ष को डस लिया और देखते ही देखते वटवृक्ष जलकर राख हो गया। तक्षक नाग ने पुनः अपने मायावी ब्राह्मण रूप को धारण कर लिया।

इच्छाधारी तक्षक ने कश्यप से कहा- 'हे द्विजश्रेष्ठ, आप अब इस भस्मीभूत वटवृक्ष को पुनः अपने मन्त्रबल से जीवित कर दीजिए।'

कश्यप ने अपने जलपात्र से अपनी अंजुली में जल लेकर अभिमन्त्रित किया और उस जल को भस्म के ढेर पर छिड़क दिया। जल के पड़ते ही वह भस्म बना वटवृक्ष पुनः पहले की भाँति सुन्दर वृक्ष के रूप में परिणत हो गया। उस वृक्ष को इस प्रकार पूर्ववत् देखकर तक्षक को बड़ा आश्चर्य हुआ।

उस नागराज तक्षक ने कश्यप से कहा- 'हे विप्रदेव, मैंने आपकी मन्त्र-शक्ति समझ ली। आपके

मन्त्र में राजा परीक्षित को जीवित करने की पूर्ण क्षमता है। लेकिन आप यह बताएँ कि आप इतना परिश्रम किसलिए करेंगे। आप जिस कामना के लिए राजा परीक्षित् को जीवित करना चाहते हैं, उसे मैं ही पूर्ण कर दूँगा। बतलाइए आप क्या चाहते हैं?

कश्यप ने कहा- 'हे नागराज! मैं धन का अभिलाषी हूँ। महाराज परीक्षित् को शापित जानकर अपनी मन्त्र-विद्या से उन्हें जीवित करने के लिए घर से निकला हूँ।'

कश्यप की बात सुनकर तक्षक ने कहा- 'आप परीक्षित से जितना धन प्राप्त करना चाहते हैं उतना धन मुझसे ही प्राप्त कर लें और अपने घर को लौट जाँय।'

तक्षक की बात सुनकर मन्त्रवेत्ता कश्यप ने बार-बार अपने मन में विचार किया कि अगर तक्षक से धन लेकर वापस लौट जाऊँ तो मैं धन-लोलुप कहलाऊँगा। मेरी मन्त्रशक्ति परमार्थ के लिए है, स्वार्थ के लिए नहीं। मैं ऐसा कर्म करके सदा के लिए लोक-निन्दा का पात्र बनूँगा। इतिहास कभी भी मुझे माफ नहीं करेगा?'

संसार में यश ही धन है, इसलिए यश रक्षणीय है। यश के बिना धन को धिक्कार है। सच माने में ''कीर्तिर्यस्य स जीवति''। 'मानं हि महतां धनम्।'' प्राचीन काल में रघु ने अपना सर्वस्व दान ब्राह्मणों के बीच कर दिया था। राजा हरिश्चन्द्र एवं कर्ण ने कीर्ति के लिए क्या नहीं किया, अपना सर्वस्व दान कर दिया। इसलिए धन के लोभ में आकर राजा परीक्षित को विष की अग्नि में कैसे जलने दूँ। ऐसा करना मेरे लिए कदापि उचित नहीं है।

यदि मैं राजा को जीवित कर दूँ तो सभी लोगों को अत्यन्त प्रसन्नता होगी और अगर राजा मर गए तो अराजकता के कारण सारी प्रजा नष्ट हो जायगी जिसका पाप मुझे लगेगा। इस अपकीर्ति के भय से कश्यप ने ध्यान करके जानना चाहा कि राजा परीक्षित् की आयु कितनी शेष बची हुई है।

कश्यप ने ध्यान-योग के द्वारा जान लिया कि राजा परीक्षित् की आयु अब समाप्त हो चुकी है। अतः राजा की मृत्यु निकट जानकर कश्यप तक्षक से धन लेकर वापस लौट गया।

इधर सात दिनों की श्रीमद्भागवत कथा सुनने के बाद राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी से कहा-

भगवंस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न विभेम्यहम्।
प्रविष्टो ब्रह्मनिर्वाणमभयं दर्शितं त्वया॥

श्रीमद्भागवत। अ० 06। द्वादश स्क. 05

हे भगवन्! आपने मुझे अभयपद का, ब्रह्म और आत्मा की एकता का साक्षात्कार करा दिया है। अब मुझे तक्षकादि किसी मृत्यु के निमित्त से अथवा मृत्यु से भी भय नहीं है। अब मैं अभय हो गया हूँ। ब्रह्मन्! अब आप मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं अपनी वाणी को बन्द कर लूँ, मौन हो जाऊँ और अपने चित्त को परमात्मा के स्वरूप में विलीन करके अपने प्राण का त्याग करूँ।

राजा परीक्षित् उसके बाद गंगाजी के पावन तट पर कुशासन पर बैठ गए और ब्रह्म में स्थित हो गए। उसी समय तक्षक ने आकर उनको डस लिया। महाराज परीक्षित् 'कृष्ण! कृष्ण!' कहते हुए पृथ्वी पर लुढ़क गए। वहाँ पर उपस्थित वेदज्ञ पण्डितों ने वैदिक प्रार्थनाओं का उच्चारण प्रारम्भ कर दिया। भक्त भगवान् का यशोगान करने लगे। योगी, तपस्वी, ऋषि और मुनिजन भगवान के ध्यान और जप में लीन हो गए। मुनिवर शुकदेवजी ने महाराज परीक्षित् के अन्तिम संस्कार के लिए आदेश दिया और स्वयं सिद्ध एवं त्यागी महात्माओं के साथ वहाँ से प्रस्थान कर गए।

उपर्युक्त कथा श्रीमद्भागवत महापुराण पर आधारित है परन्तु ''श्रीमद्देवीभागवत महापुराण'' में महाराज परीक्षित् को तक्षक द्वारा डसे जाने की कथा में थोड़ी भिन्नता है जो इस प्रकार है।

मन्त्रवेत्ता कश्यप को अपार धन देकर तक्षक ने उन्हें रास्ते से ही लौटा दिया और सातवें दिन राजा को डसने की इच्छा से शीघ्र हस्तिनापुर चला गया।

नगर में पहुँचते ही उसे पता चला कि मणि, मन्त्र तथा औषधियों से भलीभाँति सुरक्षित होकर राजा परीक्षित् अपने महल में निवास कर रहे हैं।

राजा की सुरक्षा इस प्रकार अभेद्य है कि कोई भी महल में राजा की अनुमति बिना प्रवेश नहीं कर सकता है। इतनी बड़ी और अभेद्य सुरक्षा के बीच राजा के रहने की बात जानकर तक्षक चिन्ता में पड़ गया। उसने अपने मन में सोचा कि यह राजा कितना मन्द बुद्धिवाला है जो समझ रहा है कि मैं मृत्यु से बच जाऊँगा। मृत्यु तो अवश्यम्भावी है। यदि अमित तेज वाले दैव ने मृत्यु निश्चित कर दी है, तो करोड़ों उपाय से उसे टाला नहीं जा सकता है।

यह यदि चाहता तो अनेक प्रकार के दान-पुण्य से अपनी आयु बढ़ा सकता था, क्योंकि धर्माचरण से व्याधि नष्ट होती है और आयु स्थिर होती है और ऐसा सम्भव नहीं था, तो मृत्यु के समय सम्पन्न की जानेवाली गौ-दानादि क्रियाएँ करके मृत्यु के अनन्तर स्वगयात्रा कर सकता था अन्यथा इसे तो नरक ही जाना होगा।

ऐसा विचार करते हुए तक्षक नाग ने अपने अपने सहयोगी अन्य श्रेष्ठ नागों को तपस्वी ब्राह्मणों का वेष धारण कराकर राजा के पास भेजा। वे ब्राह्मण वेषधारी नागगण अपने पास कुछ फल साथ ले गए, जिसमें एक सुन्दर फल के अन्दर एक कीट के रूप में तक्षक नाग भी स्वयं प्रविष्ट था।

वे सब राजमहल के आगे खड़े हो गए। इस प्रकार तपस्वियों के रूप में खड़े देखकर द्वारपाल ने उनसे पूछा- 'आपलोग क्या चाहते हैं? उनलोगों ने कहा कि हमलोग महाराज को देखने के लिए तपोवन से आए हैं। आप कृपया जाकर महाराज से कहें कि कुछ मुनिलोग तपोवन से आए हैं वे आपका मन्त्राभिषेक करना चाहते हैं और फलरूपी प्रसाद देकर पुनः तपोवन लौट जाना चाहते हैं। इस समय राजभवन में जहाँ राजा विराजमान हैं वहाँ हमलोग जायेंगे और उन्हें अपने आर्शीवाद से दीर्घायु बनाकर अपने आश्रम को लौट जायेंगे।'

द्वारपाल ने उन्हें ब्राह्मण एवं तपस्वी समझकर उनका अभिवादन करते हुए उनसे कहा- 'हे ब्राह्मण देव! अभी उनसे मिलना आपलोगों के लिए सम्भव नहीं है। इसलिए आज कृपया लौट जायें और कल प्रातः आप सब राजमहल में पधारे।'

तब ब्राह्मणों ने कहा कि हमलोगों से आप फल-फूल ग्रहण कर लें और इसे महाराज के पास प्रसाद के रूप में पहुँचा दें।

द्वारपाल ने तपस्वियों के आने की सूचना महाराज को दे दी। तब महाराज ने कहा कि वे लोग प्रसाद के रूप में जो कुछ भी देना चाहते हैं, ले लों। द्वारपाल ने जाकर तपस्वियों से प्रसाद स्वरूप में फल-फूल ले लिया और राजा परीक्षित् के हाथों में लाकर दे दिया।

उन ब्राह्मण वेषधारी नागों के चले जाने पर उन फलों के लेकर परीक्षित् ने मन्त्रियों से कहा- 'हे सचिवो, आपलोग भी इन फलों का सेवन कीजिए और मैं इसी एक सुन्दर फल को खाऊँगा।' इतना कहकर राजा ने ज्योंही उस सुन्दर फल को बीच से विदीर्ण किया त्योंही उसके अन्दर एक ताम्र वर्णवाला एक काले नेत्रवाला छोटा-सा कीट राजा को दिखलाई पड़ा।

राजा ने उसे देखकर मन्त्रियों से कहा- 'सूर्य अस्त हो रहा है और आज सातवाँ दिन भी समाप्त हो रहा है। अब मुझे विष का भय नहीं है। मैं ब्राह्मण के उस शाप को स्वीकार करता हूँ कि यह कीट मुझे डस ले।'

ऐसा कहकर राजा ने उस कीट को अपने गले पर रख लिया। देखते ही देखते वह छोटा सा कीट भयंकर तक्षक के रूप में परिणत हो गया और राजा के सम्पूर्ण शरीर में लिपट गया। उस नाग ने तत्क्षण राजा को डस लिया। उस सर्प को राजा के शरीर में आबद्ध हो जाने से राजा इधर-उधर हिल-डोल भी नहीं सके और उनका प्राणान्त हो गया। तक्षक क्षण भर में राजा का प्राण हरकर पुनः आकाश में चला गया। इस दृश्य को देखकर वहाँ उपस्थित सभी मन्त्री एवं सभासद् विलाप करने लगे।

सेवानिवृत्त अध्यापक
उपाध्याय टोला, राजगीर, नालंदा

❑

श्रीकृष्णाष्टमी (दि. 5 सितम्बर, 2015) के अवसर पर विशेष

युगलछवि-गीत

डा. राकेश चन्द्र मिश्र 'विराट्'

जय श्री राधा! जय श्री कृष्ण! श्री राधा कृष्णाय नमः।।
मंजुल रूप मनोहर वेश; जय श्री राधा!
मोर मुकुट अति कुंचित केश; जय श्री कृष्ण!
अति सुन्दर परिधान वसन; श्री राधा कृष्णाय नमः।
जय श्री राधा! जय श्रीकृष्ण श्री राधा कृष्णाय नमः।
नूपुर, कंगन, नथ, कटिबंध; जय श्री राधा।
पीताम्बर मृदुल स्मित अधर; जय श्री कृष्ण।
दधि-मटकी, मुरलीधर युगल; श्री राधा कृष्णाय नमः। जय श्रीराधा.....
पीन पयोधर, क्षीण अधर द्वय; जय श्री राधा।
वितत वक्ष, सुंदर किशोर वय; जय श्री कृष्ण।
मनभावन शुचि शाश्वत पावन; श्री राधा कृष्णाय नमः। जय श्रीराधा.....
लोचन परितः कज्जल कोर; जय श्री राधा।
नरवर नागर, व्रज चितचोर; जय श्री कृष्ण।
वृषभ नंदिनी, यशुमति नंदन; श्री राधाकृष्णाय नमः। जय श्रीराधा.....
हरित भरित यौवन ऐश्वर्य; जय श्री राधा।
रुचिरवेश, अदभुत सौकर्य; जय श्री कृष्ण।
लज्जित रति, अनंग मदभंग; श्री राधा कृष्णाय नमः। जय श्रीराधा.....
सुकर ग्रीव, सुरमित वनमाल; जय श्री राधा।
तिर्यक् भ्रू, द्वय नयन विशाल; जय श्री कृष्ण।
मनहर छवि, आनंद स्वरूप; श्री राधा कृष्णांय नमः। जय श्रीराधा.....
गौर वर्ण नख-शिख अभिराम; जय श्री राधा।
श्याम वर्ण अति ललित ललाम; जय श्री कृष्ण।
गौरश्याम छवि, अग-जग मोहन; श्रीराधाकृष्णाय नमः। जय श्रीराधा.....
परालक्ष्मी, अति लावण्य; जय श्री राधा।
चिन्मय प्रभु, संसृति अभिवन्द्य; जय श्री कृष्ण।
युगल रूप मम उर उत्कीर्ण; श्री राधाकृष्णाय नमः। जय श्रीराधा.....

हिन्दी विभाग,
जवाहर नवोदय विद्यालय
कोलेबिरा (सिमडेगा)

सूर्य और चन्द्रमा की गति में भिन्नता के कारण एक युग में सौरमासों की संख्या ४३२०००० × १२ = ५१८४०००० होती है किन्तु चान्द्रमासों की संख्या ५३४३३३३६ होती है। इन दोनों का अन्तर १५९३३३३६ है, इसलिए एक युग में इतने ही अधिकमास होते हैं। इस प्रकार ३२ मास १८ दिनों के बाद एक मास मलमास या अधिकमास कहलाता है। इसके सम्बन्ध में सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है- **सार्द्धवर्षद्वयेतीते पञ्चपक्षे दिनत्रये। दिवसस्याष्टमे भागे पतत्येकोऽधिमासकः।** अर्थात् 32 मास 18 दिन एवं 6 घंटा 15 मिनट पर एक मलमास आरम्भ होता है। सनातन धर्म के पंचाङ्ग में इसके कारण प्रत्येक तीसरे वर्ष में सौर मास एवं चान्द्रमास का अन्तर समाप्त हो जाता है। यद्यपि इस एक मास में शुभकर्म वर्जित होते हैं, किन्तु पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु की पूजा प्रशस्त मानी जाती है। इसका विशद विवेचन बृहन्नारदीय-पुराण में हुआ है। इस अंश को लोक में प्रचार के लिए 1880 ई के आसपास भारतेन्दु हरिश्चन्द ने इसका अनुवाद किया था। साहित्यिक धरोहर के रूप में यह अनुवाद प्रस्तुत है। इसका एकबार प्रकाशन 'धर्मायण' के 66वें अंक में भी हो चुका है।

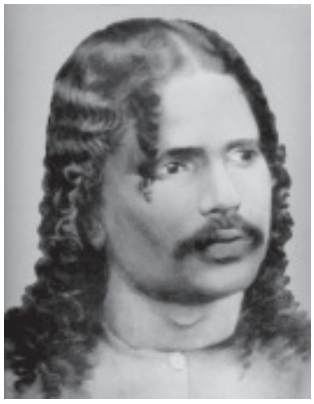

भारतेन्दु हरिश्चन्द

साहित्यिक धरोहर

पुरुषोत्तम मास माहात्म्य

भारतेन्दु हरिश्चन्द द्वारा अनूदित

मृगमद-मुद्रित-चारु-कपोलम् मृग-मद-मेचक-लोचन-लोलम्।
मृगमदमेचक-सुन्दर-रूपम् नौमि हरिं वृन्दावन-भूपम्।।१।।

दोहा

श्री पुरुषोत्तम-राधिका चरण-शरण रहु आय।
कटि जैहैं भवभोग भय, रोग कुसोग बलाय।।१।।
जिन पुरुषोत्तम नाम सुभ, सहस कहे रचि गाय।
सो पुरुषोत्तम बदन बपु, वल्लभ होहु सहाय।।२।।
पुरुषोत्तम-पद जुग सुमिरि, धरि हिय परम अनन्द।
पुरुषोत्तम की विधि लिखी, पुरुषाधम हरिचन्द।।३।।

एक समय अनेक देवर्षि, राजर्षि, शिष्य, प्रशिष्य समेत लोकोपकारशील स्वयं तीर्थरूप तीर्थपाद चरणारविन्द मधुव्रत तीर्थ यात्रा के मिस नैमिषक्षेत्र में एकत्र हुए और वहाँ महाभागवत सूत पौराणिक भी आए। सूतजी से ऋषियों ने इस असार संसार के पार जाने का उपाय और श्रीकृष्ण की लीला का प्रश्न किया। सूतजी बोले– मैं अनेक तीर्थों में भ्रमण करता हुआ श्रीगंगाजी के किनारे भगवान् श्री शुकदेव जी के मुखारविन्द से श्री मद्भागवत रूपी मधुर सुधारस का पान करके आया हूँ, जो आज्ञा हो वह कथा आप लोगों को सुनाऊँ। ऋषियों ने कहा सहज उपाय से भगवत्-प्राप्ति का जो साधन हो वह कहिए। सूतजी बोले– एक दिन भगवान् नारद जी चारों ओर घूमते हुए बद्रिकाश्रम में भगवान् नारायण के पास गए और यही प्रश्न किया कि भगवन्! कलियुग के जीवों को स्वल्प साधन में भगवान् की प्राप्ति का उपाय कहिए। यह सुनकर भगवान् नारायण ने पुरुषोत्तम मास का माहात्म्य कहा।

पाण्डवों को वन में अत्यन्त क्लेशित देखकर उनको दुःख से छूटने हेतु भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने पुरुषोत्तम माहात्म्य सुनाया। सब मासों के एक-एक देवता नियत हैं, इससे जब पहले मलमास पड़ा तब उसका कोई देवता नहीं था, और इस कारण लोग उसकी निन्दा करते थे। मलमास इस बात से अत्यन्त दुःखी होकर भगवान् के पास गया और भगवान् वैकुण्ठनाथ उसको लेकर गोलोक में गए। पूर्ण परब्रह्म सच्चिदानन्द घन भगवान् श्री कृष्णचन्द्र मलमास का दुःख सुनकर बोले– मैं पुरुषोत्तम तेरा स्वामी हूँ, अतएव तेरा नाम आज से पुरुषोत्तम मास होगा और सब मासों में तेरा फल विशेष होगा। जो साधक लोग कार्तिकादि पुण्य मासों से अनेक वर्ष में भी करके फल न पावेंगे, वह पुरुषोत्तम मास के थोड़े साधन में फल पावेंगे।

भगवान् श्रीकृष्ण धर्मराजजी से कहते हैं कि पूर्व जन्म में जब द्रौपदी मेधावी ऋषि की कन्या थी तब दुर्वासा ऋषि ने इसे पुरुषोत्तम मास का व्रत करने को कहा था परन्तु स्त्री-बुद्धि से इसने पुरुषोत्तम मास का अनादर किया और शिवजी का व्रत करके पाँच बेर पति माँगकर तुम पाँचों को पति पाया, परन्तु पुरुषोत्तम के अनादर से बारहवर्ष की विपत्ति भोगनी पड़ी। सो तीन महीने पीछे पुरुषोत्तम मास आनेवाला है, सो इसमें तुम लोग अवश्य व्रत करना।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की आज्ञानुसार पाण्डवों ने पुरुषोत्तम मास का व्रत किया और विपत्ति से छूटकर भगवान् की कृपा से उत्तरोत्तर अनेक शुभफल पाया।

नारद जी से भगवान् नारायण बोले– "पूर्व काल में सत्ययुग में हैहय देश का राजा दृढ़धन्वा था। पुष्करावर्त्त नगर उसकी राजधानी थी और विदर्भ नगर के राजा की कन्या गुणसुन्दरी उसकी रानी थी। चारुमती कन्या और चित्रवाक्, चित्रबाहु, मणिमान् और चित्रकुण्डल यह चार पुत्र थे। इस राजा का पुण्य प्रताप ऐश्वर्य सब महान् अखण्डित था। एक दिन राजा को अकस्मात् चिन्ता हुई कि किस पुण्य से हमको ऐसा अखण्ड ऐश्वर्य मिला। इसी चिन्ता में राजा शिकार खेलता हुआ एक मृग के पीछे गहन वन में घुस गया और एक वृक्ष के नीचे थककर विश्राम करने लगा, तो वहाँ एक सुग्गे को यह पढ़ते हुए सुना–

पाय जगत में सकल सुख, करत न तत्व विचार।
असत विषय भूल्यो फिरत किमि लहिहै भव पार।।३।।

सुग्गे को मनुष्य की बोली बोलते और परम तत्त्व के पूर्वोक्त वाक्य को पढ़ते सुनकर राजा को अत्यन्त आश्चर्य और मोह हुआ। यहाँ तक कि घर आकर काम काज छोड़कर रात दिन उसी सुग्गे का वाक्य सोचने लगा। एक दिन भगवान् वाल्मीकि इस राजा के घर पर आए और राजा ने बड़ी नम्रता से सुग्गे के वाक्य का आशय पूछा। वाल्मीकि जी ध्यान करके बोले– पूर्व जन्म में आप ताम्रपर्णी के निकट सुदेव नामक ब्राह्मण थे। अपनी स्त्री गौतमी सहित पुत्र के हेतु आपने भगवान् की बड़ी तपस्या की। यद्यपि सुदेव के सात जन्म में भी पुत्र नहीं लिखा था तथापि भगवान् के वाक्य से गरुड़जी ने सुदेव को पुत्र का वरदान दिया। सुदेव ने शुकदेव नामक एक सर्वगुण सम्पन्न पुत्र पाया परन्तु देवल ऋषि के कहे हुए फल के अनुसार बारह वर्ष की अवस्था में वह बावली में डूब कर मर गया। सुदेव पुत्र-शोक से अत्यन्त व्याकुल होकर रोने लगा और यहाँ तक कि संयोग से उस समय आया हुआ पुरुषोत्तम मास उसने बिना अन्न जल के बिता दिया। इस व्रत से भगवान् प्रसन्न होकर प्रगट हुए और कहा कि तुमने हठ करके पुत्र का वरदान लिया था। इससे धनुश्शर्मा ब्राह्मण की भाँति अन्त में दुःख पाया। अब तुम्हारा पुत्र जी जाएगा और तुम बारह हजार वर्ष पुत्र सहित इस शरीर में रहकर अन्त में सुधन्वा नामक राजा होगे और चार पुत्र, एक कन्या और राज्य का अखण्ड ऐश्वर्य पाओगे। सो उसी पुण्य से आपने यह राज्य और ऐश्वर्य पाया है।

वह सुग्गा आपका पूर्व जन्म का शुकदेव नामक पुत्र था, जो आप को राज-काज में मग्न देखकर आपके हित के हेतु सुग्गे के रूप में आपको चेतावनी का शुभ वाक्य सुना गया।

वाल्मीकि जी से अपने पूर्व जन्म का चरित्र और पुरुषोत्तम का विचित्र माहात्म्य सुनकर सुधन्वा ने उनसे पुरुषोत्तम मास की विधि पूछी। ऋषि बोले– पुरुषोत्तम मास में ब्राह्म मुहूर्त में उठकर शौच करके और दन्तधावन करके तीर्थ में स्नान करे फिर गोपी चन्दन का ऊर्ध्व पुण्ड और शैव हो तो त्रिपुण्ड तिलक लगाकर भुजापर शंख चक्र का चिन्ह लगाकर संध्या करे। फिर पवित्र स्थान में चावल का अष्ट दल बनाकर उस पर सोने, चाँदी, तामे, पीतल वा मिट्टी का कलश रक्खे, कलश में इन मन्त्रों से जल भरे–

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समास्थितः।
मूले तत्र स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः।।
कुक्षौ तु सागराः सर्व्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदस्सामवेदो ह्यथर्वणः।
अंगैस्तु सहिताः सर्वे कलशं हि समाश्रिताः।।
गंगा गोदावरी चैव कावेरी च सरस्वती।।
आयान्तु मम शांत्यर्थम् दुरितक्षयकारकाः।।

इस मन्त्र से कलश की प्रतिष्ठा करके, कलश का पूजन करके एक तंदुल पूर्णपात्र कलश के ऊपर रक्खे। उस पर पीला कपड़ा बिछा कर श्री राधिका सहित भगवान् की सोने की मूर्ति स्थापन करके पुरुषोत्तम बीज और नीचे लिखे हुए मन्त्रों से प्राणप्रतिष्ठा करे।

ॐ तद्विष्णोः श्रीः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततं स्वाहा।

ॐ अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाःक्षरन्तु च अस्यै देवत्व संख्यायै स्वाहा।

जो वेद मन्त्र का अधिकार न हो तो श्री राधिकासहितपुरुषोत्तमाय नमः स्वाहा– इस मन्त्र से प्राणप्रतिष्ठा करके नीचे लिखी हुई विधि से पूजा करे।

आगच्छ देव देवेश श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम।
राधया सहितश्चात्र गृहाण पूजनं मम।।१।।
श्रीराधिकासहितपुरुषोत्तमाय नमः आवाहनं समर्पयामि इत्यावाहनम्।
नानारत्नसमायुक्तं कार्तस्वरविभूषितम्।
आसनं देव देवेश गृहाण पुरुषोत्तम।।२।।
श्रीराधायाः आसनम्।
गंगादिसर्वतीर्थेभ्यो मया प्रार्थनयाहृतम्।
तोयमेतत्सुखस्पर्शं पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम्।।३।।
इति पाद्यम्।
नन्दगोपगृहे जातो गोपिकानन्दहेतवे।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे।।४।।
इत्यर्घ्यम्।
गंगाजलं समानीतं सुवर्णकलशस्थितम्।
आचम्यतां हृषीकेश पुराणपुरुषोत्तम।।५।।
इत्याचमनम्।

कार्यं सिद्धिमायातु पूजिते त्वयि धातरि।
पञ्चामृतैर्मया नीतै राधिकासहितो हरे।।६।।
इति स्नानम्।
पयो दधि घृतं गव्यं माक्षिकं शर्करा तथा।
गृहाणेमानि द्रव्याणि राधिकानन्ददायक।।७।।
इति पंचामृतस्नानम्।
योगेश्वराय देवाय गोवर्द्धनधराय च।
यज्ञानां पतये नाथ गोविन्दाय नमो नमः।।८।।
गंगाजलसमं शीतं नन्दितीर्थसमुद्भवम्।
स्नानं दत्तं मया कृष्ण गृह्यतां नन्दनन्दन।।९।।
इति पुनः स्नानम्।
पीताम्बरयुगं देवसर्वकामार्थसिद्धये।
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण सुरसत्तम।।१०।।
इति वस्त्रम् आचमनञ्च।
दामोदर नमस्तेस्तु त्राहि मां भवसागरात्।
ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण पुरुषोत्तम।।११।।
उपवीतम् आचमनम्।
श्रीखण्डचन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम्।।१२।।
इति चन्दनम्।
अक्षतास्तु सुरश्रेष्ठ कुंकुमाक्ताः सुशोभिताः।
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण पुरुषोत्तम।।१३।।
इत्यक्षतान्।
माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो।
मया हृतानि पूजार्थं पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम्।।१४।।
इति पुष्पाणि।

ततोङ्ग पूजा
नन्दात्मजो यशोदायास्तनयः केशिसूदनः।
भूभारोत्तारकश्चैव ह्यनन्तो विष्णुरूपधृक्।।१५।।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च श्रीकण्ठः सकलास्त्रधृक्।
वाचस्पतिः केशवश्च सर्वात्मेति च नामतः।।१६।।
पादौ गुल्फौ तथा जानू जघने च कटी यथा।
मेढ्रं नाभिं च हृदयं कण्ठे बाहू मुखं तथा।।१७।।
नेत्रे शिरश्च सर्वाङ्गं विश्वरूपिणमर्चयेत्।
पुष्पाण्यादायक्रमशश्चतुर्थ्यंतैर्जगत्पतिम् ।।१८।।
प्रत्यंगपूजां कृत्वा तु पुनश्च केशवादिभिः।

चतुर्विंशतिमन्त्रैश्च चतुर्थ्यन्तैश्च नामभिः।।१६।।
पुष्पमादाय प्रत्येकं पूजयेत् पुरुषोत्तमम्।।२०।।
वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।२१।।
इति धूपम्।
त्वं ज्योतिः सर्वदेवानां तेजसां तेज उत्तमम्।
आत्मज्योतिः परं धाम दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।२२।।
इति दीपम्।
नैवेद्यं गृह्यतां देव भक्तिं मे ह्यचलां कुरु।
ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च परां गतिम्।।२३।।
इति नैवेद्यम्। मध्यपानीयम् उत्तरापोशनञ्च।
गंगाजलं समानीतं सुवर्णकलशस्थितम्।
आचम्यतां हृषीकेश त्रैलोक्यव्याधिनाशन।।२४।।
इत्याचमनम्।
इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि।।२५।।
इति श्रीफलम्।
गन्धकर्पूरसंयुक्तं कस्तूर्यादिसुवासितम्।
करोद्वर्तनकं देव गृहाण परमेश्वर।।२६।।
इति करोद्वर्तनम्।

उदयपुर से प्राप्त 14वीं शती का भित्ति-चित्र

पूगीफलसमायुक्तं सकर्पूरं मनोहरम्।
भक्त्या दत्तं मया देव ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्।।२७।।
इति ताम्बूलम्।
हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे।।२८।।
इति दक्षिणाम्।
शारदेन्दीवरश्यामं त्रिभंगललिताकृतिम्।
नीराजयामि देवेशं राधयासहितं हरिम्।।२९।।
इति नीराजनम्।
रक्ष रक्ष जगन्नाथ रक्ष त्रैलोक्यनायक।
भक्तानुग्रहकर्त्ता त्वं गृहाणास्मत् प्रदक्षिणाम्।।३०।।
इति प्रदक्षिणां
यज्ञेश्वराय देवाय तथा यज्ञोद्भवाय च।
यज्ञानां पतये नाथ गोविन्दाय नमोनमः।।३१।।
इति मन्त्रपुष्पम्।
विश्वेश्वराय विश्वाय तथा विश्वोद्भवाय च।
विश्वस्य पतये तुभ्यं गोविन्दाय नमो नमः।।३२।।

इति नमस्कारान्।

मन्त्रहीनेति मन्त्रेण क्षमाप्य पुरुषोत्तमम्।
स्वाहान्तैर्नाममन्त्रैश्च तिलहोमो दिने दिने।।३३।।

इति

पूजन करके हविष्यान्न भोजन करे। मांस, मद्य और मादक वस्तु, द्विदल, तैल पक्व बड़ी, उरद, मसूर इत्यादि वस्तु न खाय। भाव-दुष्ट, क्रिया-दुष्ट और शब्द-दुष्ट वस्तु का वर्जन करे। पराये का द्रोह, अन्न, स्त्री और धन से दूर रहे। बिना तीर्थ परदेश न जाय, निन्दा न करे, जंभीरी नीबू बासी अन्न, ब्रह्मण का बेचा हुआ रस, भूमि से उत्पन्न लवण, ताम्रपात्र में रखा हुआ गव्य, चमड़े के बर्तन का जल, ये सब मांस के तुल्य हैं। रजस्वला, म्लेच्छ, पतित, व्रात्य और देव-ब्रह्मण-द्रोही से पुरुषोत्तम में सम्बन्ध न रखे। इनका और कौवे का, सूतकवाले का छूआ अन्न और दो बेर पकाया हुआ तथा जला हुआ अन्न न खाय। प्रतिपदा से पूर्णिमा तक कूष्माण्ड आदिक का वर्जन करे और जो वस्तु छोड़ै वह वस्तु ब्रह्मण को दान दे। केवल दूध पीकर वा घी पीकर फलाहार करके वा अयाचित खाकर उपवास, एक नक्त वा नक्त व्रत जो बन पड़े और बिना कष्ट निबहै वह करे। शालिग्राम का पूजन करै, श्रीमद्भागवत सुने और सांयकाल को दीपदान करे।

राजा दृढ़धन्वा ने वाल्मीकि ऋषि से दीपदान का माहात्म्य पूछा, इस पर वाल्मीकि जी ने कहा– प्राचीन काल में सौभाग्य नगर में एक चित्रभानु नाम राजा था और चन्द्रकला नामक उसकी रानी थी। यह राजा धन धान्य सब प्रकार से सुखी था। एक दिन इसके यहाँ अगस्त ऋषि आए और राजा ने अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त पूछा। मुनि ने कहा– तुम बड़े दुष्ट मणिग्रीव नाम शूद्र थे और यह रानी तुम्हारी पतिव्रता स्त्री थी। कुकर्म में सब धन खोकर शिकार खेलकर अपनी जीविका करते थे। एक दिन घोर वन में मार्ग भूले हुए उग्रदेव नामक थके ब्राह्मण की तुम लोगों ने बड़ी सेवा किया और उनसे अपना दुःख निवेदन किया। इससे प्रसन्न होकर ऋषि ने पुरुषोत्तम मास में दीपदान करने का उपदेश किया और मणिग्रीव ने वन में इंगुदी के तेल से दीपदान किया, जिससे भगवान् ने प्रसन्न होकर तुमको वरदान दिया और इस जन्म में तुमको सब सुख मिले।

दीपदान का माहात्म्य सुनकर दृढ़धन्वा ने पुरुषोत्तम के उद्यापन की विधि पूछी। वाल्मीकि जी ने उत्तर दिया कि कृष्णपक्ष की चतुर्दर्शी वा नौमी वा अष्ठमी को उद्यापन करना। तीस सपत्नीक ब्राह्मण को न्यौता देना और पंचधान्य का सर्वतोभद्र बनाकर चारों दिशा में चार कलशों पर वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध का स्थापन करना। बीच में नित्य पूजित श्री राधिका सहित श्री पुरुषोत्तम का स्थापन करना। एक वैष्णव ब्राह्मण को आचार्य और चार ब्राह्मणों को जप की वरणी देकर चारों दिशा में दीपदान करके चतुर्व्यूह का जप करना और भगवान् की पूजा करना। पंचरत्न और फल से भगवान् को भक्तिपूर्वक अर्घ्य देना।

अर्घ्य मन्त्र–

देवदेव नमस्तुभ्यं पुराणपुरुषोत्तम।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे।।
वन्दे नवघनश्यामं द्विभुजं मुरलीधरम्।
पीताम्बरधरं देवं सराधं पुरुषोत्तमम्।।

फिर तिल से **श्रीराधिकासहितपुरुषोत्तमाय नमः स्वाहा** इस मन्त्र से होम करना और तर्पण मार्जन के पीछे भगवान् का नीराजन करना।

मन्त्र–

नीराजयामि देवेशमिन्दीवरदलच्छविम्।
राधिकारमणं प्रेम्णा कोटिकन्दर्प्पसुन्दरम्।।

फिर क्षण भर भगवान् का ध्यान करना–

अन्तर्ज्योतिरनन्तरन्तरचिते सिंहासने संस्थितं
वंशीनादविमोहितं व्रजवधूवृंदावने सुन्दरम्।।
ध्यायेद्राधिकया सकौस्तुभमणिप्रद्योतितोरस्थलं
राजद्रत्नकिरीटकुण्डलधरं प्रत्यग्रपीताम्बरम्।।

फिर पुष्पांजलि देना और प्रणाम करना। मन्त्र–

नौमि नव्यघनश्यामं पीतवाससमच्युतम्।
श्रीवत्सभासितोरस्कं राधिकासहितं हरिम्।।

फिर ब्रह्मा को पूर्णपात्र दान करके गोदान करना और घृतपात्र, तिलपात्र, उमा महेश्वर, सोहागपिटारी, वस्त्र, पद इत्यादि दान करना और जो श्रीमद्भागवत करे तो बड़ा ही पुण्य है। पुरुषोत्तम मास में श्री भागवत दान की समता अन्य दान नहीं कर सकते।

और तीस कांसे की थाली में तीस-तीस पूआ रखकर ब्राह्मणों को दान देना। और भी अन्न दानादि जो बन पड़े वह देना। अमावस्या की रात को जागरण करके सबेरे पूजा पीठ और सोने की मूर्ति दान देना।

मन्त्र–

श्रीकृष्ण जगदाधार जगदानन्ददायक।
ऐहिकामुष्मिकान् कामान् निखिलान् पूरयाशु मे।।१।।
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं जनार्द्दन।
व्रतं सम्पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाद्दयानिधे।।२।।

फिर जो वस्तु का त्याग किया हो, उसका यथाक्रम दान करना। यथा– नक्त व्रत में भोजन, आयाचित में स्वर्णदान, धात्री स्नान में दधि, फल न खाया होय तो फल, तेल छोड़ा होय तो घी, घी छोड़ा होय तो दूध, अन्न छोड़ा होय तो अन्न, भूमि-शयन लिया होय तो सेज, पत्र भोजन किया होय तो घी-चीनी, मौन लिया होय तो घण्टा, तिल और सोना। क्षौर न बनवाया हो तो दर्पण, जूता छोड़ा होय तो जूता, नमक छोड़ा होय तो घी, गुड़, तेल और नमक, दीपदान का नेम लिया होय तो ताँबे का दीया और कोने की बत्ती और एकान्तर उपवास किया होय तो वस्त्र सहित आठ कुम्भ दान करे। पुरुषोत्तम मास में एक अन्न भोजन करने का बड़ा पुण्य है।

वाल्मीकि जी से पूर्व जन्म का वृत्तान्त और पुरुषोत्तम-माहात्म्य सुनकर राजा स्त्री सहित वन में जाकर तपस्या करके अन्त में गोलोक में गया।

नारायण नारदजी से कहते हैं कि कन्दर्प नामक ब्राह्मण बड़ा पापी था, जन्म भर में केवल एक वैश्य को पुरुषोत्तम की पूजा करते दर्शन किया था और कोई पुण्य नहीं किया था। इसी पाप से एक जन्म में प्रेत और दूसरे में वह बन्दर हुआ परन्तु पुरुषोत्तम की पूजा के पुण्य से इन्द्रनिर्मित मृगतीर्थं पर उसका निवास हुआ और किसी समय पुरुषोत्तम मास में एक बेर उसने दुःखित होकर तीन दिन तक कुछ न खाया, न पीया और उसी तीर्थ पर प्राण त्याग किया और पुरुषोत्तम के प्रभाव से अन्त में गोलोक गया।

नारदजी के प्रश्न पर श्रीनारायण दिनचर्य्या कहते हैं।

प्रातःकाल की क्रिया समाप्त करके पंचभूत देव पितृ बलि देकर अतिथि को भोजन कराकर दो वस्त्र

से अकेले एक पात्र में पूर्वापर आचमन संयुक्त भोजन करना। भोजन के पीछे पान खाकर भगवान् के ध्यानपूर्वक भक्तिशास्त्र का विचार करना। तीसरे पहर धर्माविरुद्ध व्यवहार करना। साँझ को तीर्थ पर देहशुद्धि पूर्वक संध्या करके दीपदान करके भगवान् का स्मरण करके शयन करना।

इसके पीछे नारायण ने पतिव्रता के धर्म और पुरुषोत्तम की विशेष महिमा कहा। और विधान किया कि –

गोवर्धनधरं वन्दे गोपालं गोपरूपिणम्।
गोकुलोत्सवमीशानं गोविन्दं गोपिकाप्रियम्।।१।।

इस मन्त्र का पुरुषोत्तम मास में बार-बार जप करना।

दोहा–

श्री पुरुषोत्तम पद सुमिरि, धारि हृदय आनन्द।
यह पुरुषोत्तम विधि लिखी,कविवर श्री हरिचन्द।।१।।
प्रेम पियारे प्रेमनिधि, प्रेमिन-जीवन-प्रान।
तिनके पद अरपन कियो, यह मलमास-विधान।।२।।

इति श्री बृहन्नारदीय पुराण से संगृहीत पुरुषोत्तम-माहात्म्य समाप्त हुआ।

(पृष्ठ संख्या २४ का शेषांश-)

हमारे धर्मशास्त्रों ने दान को अक्षय माना है, परंतु इसके छह अंग बताए गए हैं- दाता, प्रतिग्रहीता, श्रद्धा, देय सामग्री, देश एवं काल। इन छहों का यदि उचित प्रयोग होता है तो दान पवित्र तथा धर्मसम्मत है। इन छहों में किसी की अयोग्यता दानफल में क्षीणता लानेवाली है । इसलिए केवल श्रद्धावान् दाता की ही महत्ता नहीं, उपयुक्त ग्रहण करनेवाला भी महत्त्वपूर्ण है। आपका दान सदुपयोग में जाएगा, तभी फलीभूत होगा, दुरुपयोग करनेवाले को दान देकर भी अत्यल्प फल प्राप्त होगा। देय सामग्री की उपयुक्तता पर भी ध्यान रखना होगा, नहीं तो कठोपनिषद् के पात्र वाजश्रवा का भूत हमारे अंतस् में प्रवेश कर अहंकार का विस्फोट करेगा। उचित समय पर, उचित स्थान पर, उचित व्यक्ति को, उचित भाव से उचित व्यक्ति द्वारा दिया गया दान ही दान है, वरना दिखावा-छलावा हो जाएगा, कागजी कुसुम हो जाएगा ।

दान ग्रह-दोषों का, जाने-अनजाने कृताकृत पापों का, जीवन-शुद्धि का एवं संसर्ग-जनित पंकों का भी सहज निवारक है । इससे सृष्टि, सृष्टिकर्ता और सृष्टवर्ग सभी प्रभावित होते हैं। जो काम व जो फल हम जप, तप, व्रत, अनुष्ठान आदि से नहीं कर सकते या पा सकते ,वह मात्र दान से संभव है। दाता को दान देकर अहं नहीं पालना चाहिए, क्योंकि प्रतिग्रहीता ने जो लिया उससे अधिक उसका पुण्य और दाता का पाप उसके पास चला गया। ग्रहीता को साध क होना चाहिए, तभी प्रतिग्रह-दोष दूर हो सकता है।

सनातन ज्योतिष,
ए, 144, हाउसिंग कालोनी,
यशोदा देवी पथ, कंकड़बाग, पटना -20

स्थायी-स्तम्भ

संस्कृत सीखें

(तृतीय पाठ)

पिछले दो अंकों से हम संस्कृत भाषा सीखने के लिए पाठमाला दे रहे हैं। इसके अन्तर्गत सबसे पहले शब्दरूपों को कंठस्थ करने का पाठ आरम्भ किया है। पिछले अंक में 10 स्त्रीलिंग शब्दों के रूप दिये गये हैं। हमें आशा है कि हमारे नियमित पाठक शब्दों का रूप कण्ठस्थ कर चुके होंगे। इस अंक में 10 नपुंसकलिंग शब्दों के रूप दिये जा रहे हैं। ये दश शब्द परम्परा से नायक माने गये हैं। संस्कृत शिक्षण-पद्धति में प्राचीन काल से यह श्लोक प्रचलित है:-

विभक्ति एवं वचन का विचार किये बिना सीधे इन शब्दों का रूप कम्ठस्थ कर लेना सबसे उपयुक्त है। ध्यातव्य है कि प्रारम्भिक पाठों में याद करने से पूर्व अन्य किसी भी बात पर ध्यान देने से बाधा उत्पन्न होती है।

ज्ञानं दधिः पयो वर्म धनुर्वारि जगत्तथा।
मधु नाम मनोहारि दशैतानि नपुंसके॥

ज्ञानम् (ज्ञान)- ज्ञानं ज्ञाने ज्ञानानि, ज्ञानं ज्ञाने ज्ञानानि। (शेष रूप अकारान्त पुल्लिंग के समान होंगे।)

दधि (दही)- दधि दधिनी दधीनि, दधि दधिनी दधीनि, दध्ना दधिभ्याम् दधिभिः, दध्ने दधिभ्याम् दधिभ्यः, दध्नः दधिभ्याम् दधिभ्यः, दध्नः दध्नोः दध्नाम्, दध्नि, दधनि दध्नोः दधिषु, दधे, दधि दधिनी दधीनि

पयस् (पानी या दूध)- पयः पयसी पयांसि, पयः पयसी पयांसि, पयसा पयोभ्याम् पयोभिः, पयसे पयोभ्याम् पयोभ्यः, पयसः पयोभ्याम् पयोभ्यः, पयसः पयसोः पयसाम्, पयसि पयसोः पयःसु, हे पयः हे पयसी हे पयांसि।

वारि (पानी)- वारि वारिणी वारीणि, वारि वारिणी वारीणि, वारिणा वारिभ्याम् वारिभिः, वारिणे वारिभ्याम् वारिभ्यः, वारिणः वारिभ्याम् वारिभ्यः, वारिणः वारिणोः वारीणाम्, वारिणि वारिणोः वारिषु।

धनुष् (धनुष)- धनुः धनुषी धनूंषि, धनुः धनुषी धनूंषि, धनुषा धनुर्भ्याम् धनुर्भिः, धनुषे धानुर्भ्याम् धनुर्भ्यः धनुषः धनुर्भ्याम् धनुर्भ्यः, धनुषः धनुषोः धनुषाम्, धनुषि धनुषोः धनुःषु, हे धनुः हे धनुषी हे धनूंषि।

जगत् (संसार)- जगत् जगती जगन्ति, जगत् जगती जगन्ति, जगता जगद्भ्या म् जगद्भिः, जगते जगद्भ्याम् जगद्भ्यः, जगतः जगद्भ्याम् जगद्भ्यः, जगतः जगतोः जगताम्, जगति जगतोः जगत्सु, हे जगत् हे जगती हे जगन्ति।

(शेष पृ. ..... पर)

राष्ट्रीय अस्मिता और हिन्दी

प्रो० डा. आलोक कुमार

भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है और माध्यम हमेशा प्रयोग करनेवालों की मानसिकता को दर्शाता है। भारतीय भाषाओं को यदि हम देखें तो तो संस्कृत और हिन्दी को छोड़कर अन्य किसी भी भाषा को इतना व्यापक क्षेत्र नहीं मिल सका। संस्कृत का क्षेत्र सुदूर दक्षिण से लेकर हिमालय-पर्यन्त सम्पूर्ण भारत रहा, किन्तु हिन्दी भी भारत की आधी से अधिक जनता द्वारा समझी जानेवाली भाषा के रूप में गौरव पाती रही। सरहपाद से लेकर आधुनिक काल तक हिन्दी में घनेरो साहित्य लिखे गये, जिसने राष्ट्रीयता और मानवता का पोषण किया। यही कारण है कि हिन्दी राष्ट्रीय अस्मिता की भाषा मानी गयी। यहाँ लेखक ने इसी परिप्रेक्ष्य में हिन्दी भाषा एवं साहित्य पर प्रकाश डाला है। -सं.

राष्ट्र पद के तीन तत्त्व हैं- (1) भूभाग (2) उसपर बसनेवाले जन और (3) जन की संस्कृति।[1] भारतीय जन में आर्य-संस्कृति और द्रविड़ संस्कृति का अन्तर्मिलन राष्ट्र की प्रथम घटना है। खैवर और बोलन की घाटियों से विदेश से आनेवाली जातियाँ भारत में आयीं, बस गयीं और यहाँ के जन-समाज में मिल गयीं। भारतीय संस्कृति की समाहार शक्ति के कारण उनका पार्थक्य मिट गया और यह भारत महामानवों का समुद्र बन गया।[2] यहाँ की राष्ट्रीय अस्मित्ता में प्राचीन संस्कृतियों के तत्त्व मिलते गये और राजवंश की कहानी आरम्भ हो गयी।

लोकोपकारी प्राकृतिक शक्तियों को देव माना गया। अग्नि, सूर्य, इन्द्र आदि तैतीस कोटि देवों का संगठन देववाद का इतिहास बन गया। धर्मप्राण संस्कृति हमारी अस्मिता बनी। वैदिक ऋषियों ने ऋचाएँ रचीं। ऋग्वेद सबसे पुराना ज्ञान स्रोत के रूप में सामने आया। याज्ञिक संस्कृति हमारी राष्ट्रीय पहचान बनी। वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, प्राकृत, पालि और पुरानी हिन्दी का क्रम सिद्ध और नाथों की तांत्रिक संस्कृति बनी।

इस प्रकार कालमान की गति से सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग में राष्ट्रीय अस्मिता, अपनी आन्तरिक ऊर्जा से टकराकर, राजवंशों के गृह-कलह से टकराकर, त्रेता में रामायण की कथा रच गयी। द्वापर में कुरुकुल का गृह-कलह महाभारत की घटना बना।

---

1. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल
2. रवीन्द्रनाथ ठाकुर : दिनकर कृत 'संस्कृति के चार अध्याय' में उद्धृत

इन दो ग्रन्थों में अध्यात्म और लोक जीवन का जो पुनर्गठन हुआ, उसे पौराणिकों ने देववाद से इष्टदेववाद तक की सांस्कृतिक मान्यताओं से हमारी राष्ट्रीय अस्मिता गठित की। आदिकवि वाल्मीकि ने रामायण की रचना की। महाभारत की रचना वेदव्यास या कृष्ण द्वैपायन व्यास के द्वारा हुई। अस्मिता का अहंबोध और इदंबोध अहंकार का निजत्व और परत्व है। स्वार्थमयी गति से व्यक्ति, परिवार और राष्ट्र का अन्त:कलह प्रकट होता है। परमार्थ-चेतना से समाज जुड़ता है। राष्ट्रीयता परिपोषित होती है। राष्ट्रीय अस्मिता के इतिहास का यही सार है।[3]

हिन्दी को राष्ट्रीय अस्मिता का दाय उपलब्ध है। हमारा उपनिषत्-साहित्य और वेदान्त-सूत्र अस्मिता के आध्यात्मिक फलक हैं। पुराण साहित्य एक वैज्ञानिक साहित्य है। इसके विषय इस प्रकार कहे गये हैं-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तारणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

पुराण साहित्य का सार इस प्रकार कहा गया है-

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनं द्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥[4]

मानव मनोरोगग्रस्त है। इनका मूल मोह है। इनसे अनेक दुख-दर्द सामाजिक जीवन में उत्पन्न होते हैं। सब इससे ग्रसित हैं। इसे बिरले देख पाते हैं। अस्तु, व्यक्ति हो या समाज, अनियंत्रित अहंबोध के कारण ही टकराव होता है और अस्मिता का राष्ट्रीय संकट उभरता है। सम्राट् अशोक का अहंबोध कलिंग युद्ध के बलिदानियों की आत्मिक ऊर्जा से टूटा और चण्डाशोक के बाद अस्मिता बदलकर वह देवानां प्रियदर्शी चक्रवर्ती सम्राट् बन गया।[5]

हिन्दी भारतीय आर्यभाषाओं से विकसित अपने इतिहास के आदिकाल में वीर गाथाओं का टकराव सहेजती है। राजा पड़ोसी राजाओं से टकराये। विस्तारवादी मानवता में दानवता राष्ट्रीय अस्मिता को मलिन करती है। मध्यकालीन हिन्दी का इतिहास अस्मिता का क्षेत्र परिवर्तित करता है। आदिकालीन दल-बल से अस्मिता अन्तर्मुखी होकर मनोबल प्रधान हो गयी। वेदान्त दर्शनों ने ब्रह्म की सत्यता एक स्वर से स्वीकार की। जगत् को मिथ्या कहने वाले आचार्य शंकर की वाणी सामन्यजनों के आचार में मिथ्याचार बन गयी। इसे रामानुज, मध्व, विष्णुस्वामी तथा निम्बाकाचार्य ने अपने ढंग से जीव-जगत् और परमात्मा के सम्बन्धों की व्याख्या करके पौराणिक अवतारवाद की आस्था प्रकट की। अवतार लेकर प्रभु साधु-रक्षा दुष्ट-विनाश और धर्म-संस्थापना करते हैं। प्रभु और जीव के इस खेल में मानव अपनी साधनात्मक अस्मिता से परिपोषित हो, यही राष्ट्रीय ऊर्जा का स्वरूप बना। राम और कृष्ण, दो ऐसे अवतार हुए, जिनकी गाथाएँ

3. डा. बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास से सारांश
4. वही,
5. भारत वर्ष का प्राचीन इतिहास

दार्शनिक उपपत्तियों से जुड़कर इष्टदेववाद की प्रतीकोपासना में आस्था प्रकट कर गयी। सामान्यत: सन्त साहित्य की निर्गुण धारा हो या रामभक्ति और कृष्णभक्ति की सगुण धारा, ईश्वर के प्रति अटूट विश्वास ने राष्ट्रीय उर्जा को सहेजा है।

पूरा हिन्दी साहित्य का आदि काल इस्लाम शासित भारत का इतिहास है। इस पूरे काल में भारतीय जनता पर इस्लामी शासकों का कहर टूटा। इससे धार्मिक कटुता बढ़ी। राष्ट्रीय अस्मिता अन्तर्मुखी होकर भगवान् की शरण में थी।

रीतिकाल, मुगलशासकों के वैभव और विलास का काल था। मुगल शासकों के दरबारी सामन्तों का बल-विक्रम आन्तरिक कलह से टूटा। कविवर बिहारी ने दबी जवान में अन्योक्तियाँ लिखीं।

स्वारथ, सुकृत न श्रमवृथा देखु विहंग विचारि।
बाज पराये पानि परि तू पंछिन न मारि॥

जयपुर के महाराज जयसिंह की विलासिता और छोटी रानी के आकर्षण में कर्तव्य ज्ञान की विस्मृति पर बिहारी ने एक दोहा लिखकर महाराज के पास भेजा-

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास एहि काल।
अभी कभी दीपर बँध्यो आगे कौन हवाल॥[8]

इस काल में महाराणा प्रताप और अकबर का युद्ध अस्मिता के दमन की कहानी है। जीवन-पर्यन्त युद्ध कर के महाराज ने अपनी अस्मिता बचायी। औरंगजेब के शासन काल में छत्रपति शिवाजी और महाराज छत्रसाल की अस्मिता-रक्षण का युद्ध, भारतीय राष्ट्रीयता के इतिहास की शौर्य गाथा है।

शाहजहाँ के शासन काल में अंग्रेज आए उन्हें व्यापार की सनद मिली। बाद के मुगल बादशाह विलासिता में कमजोर पड़ते गये। फलत: अंग्रेजों ने उनपर कब्जा किया। लार्ड क्लाइव और ब्रिटेन के डलहौजी ने राजाओं और नबावों तक को पैरों ठुकरा कर उनकी सम्पत्ति हड़प ली। फल हुआ 1857 ई. का प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन। इस आन्दोलन में राष्ट्र की आत्मिक अस्मिता को जीवित करने के लिए राष्ट्रव्यापी आन्दोलन हुआ। इसमें झासी की रानी लक्ष्मीबाई, नाना फड़नबीस, बिहार में जगदीशपुर के राजा वीर कुंवर सिंह, पटना में गुरु गोविन्द सिंह तथा अन्य अनेक वीर बलिदानी तेवर से राष्ट्रीय अस्मिता के लिए शहीद हुए।[9]

---

6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य इतिहास
7. भारतेन्द्रु ग्रंथावली
8. बिहारी सतसई
9. सुभद्रा कुमारी चौहान की लम्बी कविता का भाव

रीतिकाल के अन्त में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ऐसे व्यक्ति हुए, जिन्होंने अध्यात्म और कृष्ण भक्ति के साथ-साथ देहो शक्ति का स्वर हिन्दी कविता में फूँका।

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं नरपशु निरा है और मृतक समान है।

भाषा के प्रश्न पर उन्होंने कहा-

निज भाषा उन्नति अहे सब उन्नति को मूल।

राष्ट्र अस्मिता के जागरण में इस मंत्र के साथ भारतेन्दु मण्डल के साहित्यकारों ने विविध विधाओं में राष्ट्रीय चेतना को बल दिया।

1901 ई. से 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन के साथ आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के मासिक परिमार्जन और राष्ट्रीय अस्मिता के गठन मैं प्रगट हुए। पूरा द्विवेदीयुग हिन्दी का सरमता और सांस्कृतिक उत्थान की नैतिकता से जागरूक हो गया। विविध विधाओं में हिन्दी ने राष्ट्रीय अस्मिता को उछाला था। प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद के साहित्य की सभी विध ाओं में राष्ट्रीय ऊर्जा का ज्वलन्त स्वर निनादित है।

'स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती' से देश निनादित हुआ। महाप्राण निराला ने 'जागो फिर एक बार' शीर्षक गीत में राष्ट्रीय अस्मिता के लिए ललकारा और कहा-

सिंहों के मांद में आया है एक स्यार
जागो फिर एक बार।[१०]

हिन्दी साहित्य के फलक पर पं. माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिली शरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर और शतशः कवियों ने राष्ट्रीय अस्मिता के लिए जनमानस को उद्वेलित किया।

स्वतंत्रता संग्राम राष्ट्रीय अस्मिता के पुर्नगठन की कहानी है। कांग्रेस की स्थापना के साथ-साथ पूरा राष्ट्र उसकी परिधि में आ गया। भूमिगत क्रान्ति आरम्भ हुई। इसके लिए संकेत भाषा हिन्दी का गठन मदन मोहन मालवीय ने किया। इसे 'ममोमा' कहते हैं। अंग संचालन की भंगिमा से सारा संदेश व्यक्त किया जाने लगा।

महात्मा तिलक ने घोषित किया- ''स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।'' वे बंदी बनाकर वर्मा के माँद में जेल में डाल दिए गये। वहीं उन्होंने 'गीता-रहस्य' नामक भाष्य और टीका लिखी।

दक्षिण अफ्रीका से रंगभेद नीति को अहिंसात्मक सत्याग्रह से समाप्त कर मोहनदास करमचंद गाँधी भारत आये। स्वतन्त्रता संग्राम का नेतृत्व किया। भारतीय कांग्रेस में सुभाषचंद्र बोस ने गरम दल का गठन किया। वे भूमिगत होकर वापस गये। वहाँ आजाद हिंद फौज का गठन किया। अंग्रेजी साम्राज्यवाद को ध्वस्त करने के लिए आम हिन्द की सेना लड़ाई के क्रम में बंदी हुई। वीर सुभाषचन्द्र भूमिगत हो गये। इस प्रकार राष्ट्रीय रक्षा के लिए वातावरण तैयार करनेवाली हिन्दी का स्वतन्त्रता संग्राम में अप्रतिम योगदान है।।[11]

---

10. निराला की कविता प्राठ्यक्रम में संकलित
11. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास रीति काल

1947 ई. के पन्द्रह अगस्त को स्वतन्त्रता मिली। सत्ता हस्तान्तरण में पहले भारतीय वायसराय चक्रवर्ती राम गोपालाचारी हुए। पंडित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में भारतीय संसद का गठन हुआ। संविधान सभा बनी। राष्ट्रीय अस्मिता का मानक तन्त्र गणतन्त्र निश्चित हुआ। हिन्दी की उपयोगिता समझकर संविधान सभा ने देश के विद्वानों का विमर्श सुनकर हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद दिया। इसकी स्वीकृति में अहिन्दी प्रान्तों के विद्वानों ने अधिक बल दिया।

स्वतन्त्रता के बाद भी अनेक व्यक्तित्व ने भारतीय अस्मिता के नाम पर विदेशों में भी हिन्दी का ध्वज फहराया। 22 जनवरी 1950 ई. को संविधान आत्मार्पित हुआ। तब से हमारी राष्ट्रीय अस्मिता गणतांत्रिक मानसिकता बन गयी है। इसके स्थापन के लिए हिन्दी सेवियों को सांवेगिक ऊर्जा की आत्मसंध की गति पर राष्ट्रीय भावना को प्रकट करते हुए साहित्य रचना है। इसमें धर्म, जाति और सौन्दर्य की अस्मिता का क्षेत्र संगठनात्मक हो, परन्तु राष्ट्रीय अस्मिता का गणतान्त्रिक मूल्य सर्वोपरि हो। हिन्दी का अन्तरराष्ट्रीय फलक 1977 ई. में अटलबिहारी वाजपेयी के यू. एन.ओ. में सारगर्भित भाषण से हुआ।

(क्रमशः)

12. दूरदर्शन से सुना हुआ भाषण
13. दूरदर्शन पर प्रसारित 3 अगस्त 2014 का कार्यक्रम

पृष्ठ सं. ५७ का शेषांश

संस्कृत सीखें

(तृतीय पाठ)

मधु (शहद)- मधु मधुनी मधूनि, मधु मधुनी मधूनि, मधुना मधुभ्याम् मधुभिः, मधुने मधुभ्याम् मधुभ्यः, मधुनः मधुभ्याम् मधुभ्यः, मधुनः मधुनोः मधूनाम्, मधुनि मधुनोः मधुषु, हे मधु हे मधुनी हे मधूनि

वर्म (कवच)- वर्म वर्मणी वर्माणि, वर्म वर्मणी वर्माणि, वर्मणा वर्मभ्याम् वर्मभिः, वर्मणे वर्मभ्याम् वर्मभ्यः, वर्मणः वर्मभ्याम् वर्मभ्यः, वर्मणः वर्मणोः वर्मणाम्, वर्मणि वर्मणोः वर्मसु हे वर्मन् हे वर्मणी हे वर्माणि

नाम (नाम)- नाम नामनी नामानि, नाम नामनी नामानि, नाम्ना नामभ्याम् नामभिः, नाम्ने नामभ्याम् नामभ्यः, नाम्नः नामभ्याम् नामभ्यः, नाम्नः नाम्नोः नाम्नाम्, नाम्नि नाम्नोः नामसु, हे नाम् हे नामनी हे नामानि।

मनोहारि (मन को लुभानेवाला)- मनोहारि मनोहारिणी मनोहारीणि, मनोहारि मनोहारिणी मनोहारीणि, मनोहारिणा मनोहारिभ्याम् मनोहारिभिः, मनोहारिणे मनोहारिभ्याम्, मनोहारिभ्यः, मनोहारिणः मनोहारिभ्यां मनोहारिभ्यः, मनोहारिणः मनोहारिणोः मनोहारिणाम्, मनोहारिणि मनोहारिणोः मनोहारिषु, हे मनोहारि मनोहारिणी हे मनोहारीणि।

❖

ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से गठिया रोग

आचार्य राजनाथ झा

गणित-फलित ज्योतिषाचार्य,
विद्यावारिधि,
ज्योतिष परामर्शदाता,
महावीर ज्योतिष मण्डप,
महावीर मन्दिर, पटना

भारतीय संस्कृत वाङ्मय में ज्योतिष-शास्त्र की प्राचीनता सर्वविदित है। ऋषियों ने **ज्योतिषामयनं चक्षुः** कहकर इस शास्त्र को वेद का नेत्र माना है। ज्योतिष-शास्त्र के मुख्यतया तीन स्कन्ध है, सिद्धान्त, संहिता एवं होरा। यहीं त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिष शास्त्र है। 'अहोरात्र' शब्द से 'होरा' शब्द निष्पन्न हुआ है। इस शब्द का अर्थ होता है लग्न। लग्न के ही आध ार पर सम्पूर्ण जातक ग्रन्थ है, जिससे हमें मानव जीवन पर होनेवाले सभी शुभाशुभ फल की जानकारी मिलती है, जिससे मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं पर फल बतलाकर ज्योतिषी शास्त्र की उपयोगिता प्रस्तुत करते हैं। जातक की कुण्डली से मात्र भूत एवं भविष्य फल का कथन ही नहीं; अपितु उनके शारीरिक एवं मानसिक रोगों की जानकारी भी हमें मिलती है।

यद्यपि ज्योतिष शास्त्र में लग्न भाव अर्थात् शरीर भाव से रोगों का ज्ञान होता है, परन्तु रिपु भाव अर्थात् छठे भाव से विशेष रोगों की तथा शत्रु का विचार किया जाता है। सर्वप्रथम मानव शरीर के किस अंग में कौन सी राशि अवस्थित है इसकी जानकारी परमावश्यक है।

मेष-सिर, वृष-मुख, मिथुन-कंधा, कर्क-हृदय, सिंह- उदर, कन्या- कमर, तुला-पेडू, वृश्चिक-लिंग, धनु-पिंडली, मकर- जंघा, कुम्भ-गुल्फ तथा मीन-राशि का स्थान पैर पर निरूपित किया जाता है। भावेश ग्रह, राशि जन्य अंगों में रोग उत्पन्न होता है, रिपुभावस्थ ग्रह एवं राशि से इसका विचार होता है।

जब भी कोई अकारक ग्रह छठे भाव के स्वामी या छठे भावस्थ हो जाता है, तो अपने बल कें अनुसार अपनी दशा, अन्तर्दशा में अपने से सम्बन्धित अंग में रोग उत्पन्न करता है। मूलतः रोग जानने के लिए जन्मकुण्डली में इस प्रकार से विचार किया जाता है। कारक भाव, कारक राशि, कारक ग्रह, पापग्रह छठे भाव तथा छठे भावस्थ ग्रह से रोग की गणना की जाती है। कोई भी रोग होने के लिए निम्नलिखित योग महत्त्वपूर्ण होते हैं।

1. कारक भाव का कमजोर होना, जो अंग बीमारी से पीड़ित होगा उस भावेश का निर्बल होना।
2. विभिन्न ग्रह अपने अपने गुणों के अनुसार विभिन्न रोग उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। यदि वह ग्रह छठे भाव के स्वामी या छठे भाव से युति करे, तो रोग पीड़ा कारक होता है।
3. यदि पापग्रह, किसी रोग का कारक ग्रह, कारक राशि, कारक भाव, छठे भावस्थ ग्रह से अथवा कारक पापग्रह से वीक्षित है, तो वे इस भाव से संबधित रोग के कारक होते हैं।

ज्योतिष के मूर्धन्य ग्रन्थ वैद्यनाथ दीक्षित (15वीं शती) द्वारा प्रणीत 'जातकपरिजात' के जातभंगाध्याय में रोगों के योगायोग की विस्तृत जानकारी मिलती है। दैवज्ञ महादेव पाठक विरचित 'जातक-तत्त्व' में भी रोग में ऊपर विस्तृत योगादि का वर्णन है।

यहाँ असाध्य गठिया रोग के बारे में ज्योतिषशास्त्रीय विचार उपस्थित है। यह रोग वायु जनित रोग है, जो शरीर की गाठों अर्थात् जोड़ो में दर्द उत्पन्न करके मनुष्य के शरीर में पीड़ा उत्पन्न करता है। जिससे आदमी को चलने-फिरने में बहुत समस्या होती है, तथा वह चल नहीं पाता है एवं दर्द से मृत्यु तुल्य कष्ट पाता है। आदमी मजबूर-सा हो जाता है। इस गठिया वात बीमारी का मुख्य कारक

ग्रह- मंगल, चन्द्रमा, गुरु, शनि है। इस बीमारी में रक्त एवं रस दूषित होता है। रक्त के कारक ग्रह मंगल और रस के कारक ग्रह चन्द्रमा तथा इस रोग के कारक ग्रह गुरु जब दूषित होते हैं तो जो भाव दूषित होता है, उस भाव से सम्बद्ध अंग में दर्द के कारक ग्रह शनि, राहु, दर्द उत्पन्न कर गठिया या वात रोग उत्पन्न करता हैं।

जिस मनुष्य की जन्मकुण्डली में चन्द्रमा दो पाप ग्रहों के बीच छठे, सातवें, आठवें भाव में तथा धनु, मकर एवं कुम्भ राशि का चन्द्रमा किसी क्रूर ग्रह- शनि, राहु, मंगल से दृष्ट हो, या मेष का शनि क्षीण चन्द्रमा के साथ लग्न में मंगल से दृष्ट हो तो यह रोग उत्पन्न करता है। अथवा छठे आठवें भाव में जिस राशि का नवमांश हो उसमें, शनि, राहु, केतु में से कोई भी ग्रह हो और नवमांशधिपति स्वगृही हो अथवा, त्रिकोण में विराजमान हो तो भी यह रोग होता है। तुला का सूर्य लग्न में यदि नीच के मंगल देखतें हों तो सभी जगह अङ्ग की गाठों में दर्द होता है।

यदि बुध क्षीण चन्द्रमा के साथ त्रिकस्थानों में शनि से दृष्ट हो तो जोड़ों में पीड़ा रहती है।

उदाहरणार्थ- किसी जातक की जन्मपत्रिका प्रस्तुत है।

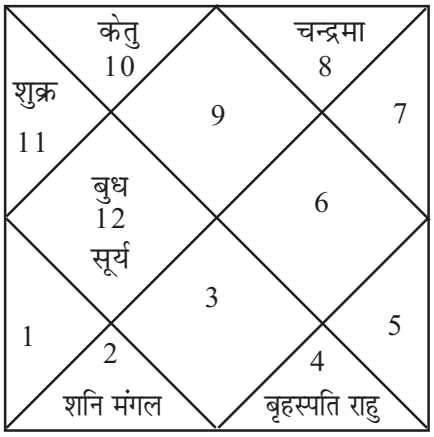

प्रस्तुत धनु लग्न की जन्मपत्री में लग्न पर मंगल की दृष्टि पड़ रही है। लग्नेश गुरु अष्टम भाव स्थित उच्च के राहु के साथ हैं तथा अष्टमेश चन्द्रमा द्वादश भावस्थित हैं तथा चन्द्रमा पर शनि की दृष्टि पर रही है, जो दर्द को बढ़ता है। फलस्वरूप जातक को केतु की महादशा में, गुरु की अन्तर्दशा में गठिया रोग का प्रकोप हुआ तथा असहनीय दर्द से परेशान हुआ एवं चलने-फिरने के लायक नहीं रहा, उपचार से बहुत दिनों बाद स्वास्थ्य-लाभ हुआ।

इस रोग से छुटकारा पाने के लिए निम्नलिखित उपाय अनुभूत हैं :-

1. लग्नेश को रत्न द्वारा बली करें।
2. चन्द्रमा, गुरु मंगल, राहु जो भी कारक ग्रह बलहीन हों, उनका रत्न धारण कर उन्हें बली करें। तथा पापग्रह से युक्त होने पर भी रत्न धारण करें।
3. रविवार को नमक न खायें। सूर्यदेव को लाल फूल, अक्षत, रक्तचन्दन मिलाकर जल से अर्घ्य दें।
4. शनि स्तोत्र, कवच का पाठ करें
5. प्रभावी पाप ग्रह का दान जप, पूजा द्वारा शान्ति करें।
6. पुखराज एवं माणिक सोने में जड़वा कर धारण करने से भी गठिया रोग में काफी लाभ होता है।
7. लहसुनिया रत्न धारण करना।
8. धतूरे की कूँची बनाकर उस अंग की सेकाई करना।